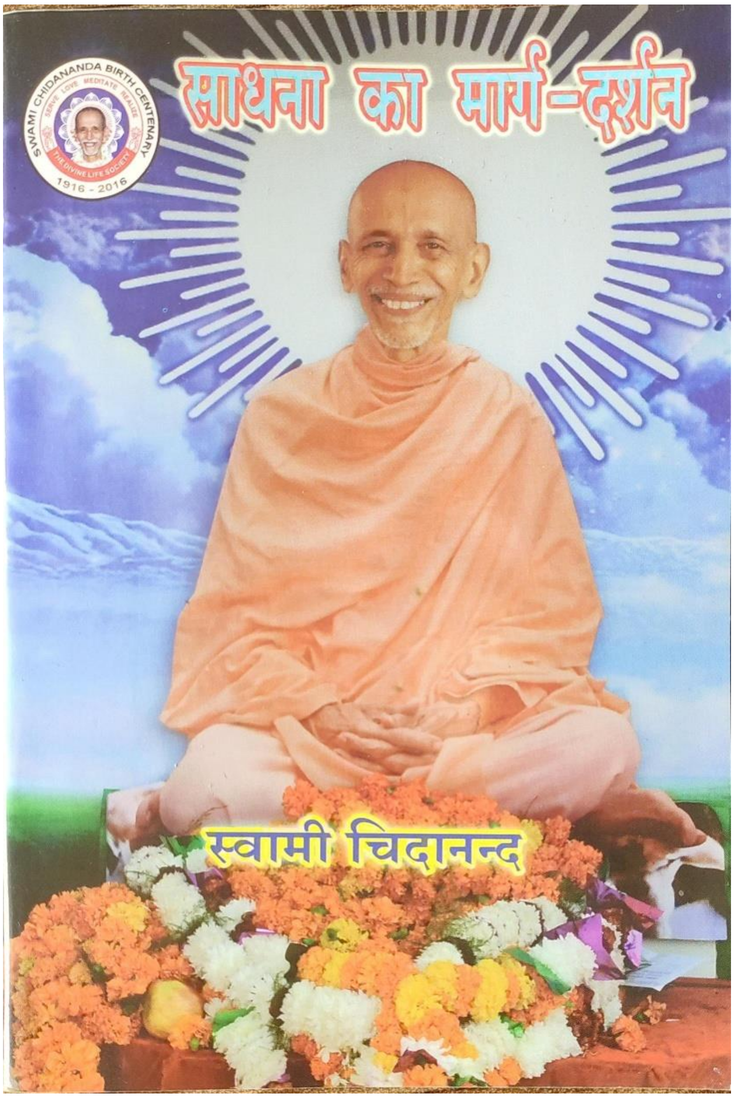

साधना का मार्ग-दर्शन
SWAMI CHIDANANDA BIRTH CENTENARY
SERVE LOVE MEDITATE REALIZE
THE DIVINE LIFE SOCIETY
1916 - 2016
स्वामी चिदानन्द

साधना का मार्ग-दर्शन

श्री स्वामी चिदानन्द

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी
पत्रालय : शिवानन्दनगर-२४९१९२
जिला : टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत
www.sivanandaonline.org, www.dishq.org

प्रथम संस्करण : २०१६

(२,००० प्रतियाँ)

Swami Chidananda Birth Centenary Series-96

निःशुल्क वितरणार्थ

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर-२४९१९२,
जिला टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड' में मुद्रित ।
online orders and Catalogue visit: dlsbooks.org For

प्रकाशकीय

परम आराधनीय श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज की जन्मशती के पुनीत अवसर की निर्दिष्ट शुभतिथि २४ सितम्बर २०१६ है। इस मंगलमय महोत्सव को मनाने हेतु मुख्यालय शिवानन्द आश्रम की सुनिश्चित योजना-अनुसार परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज के प्रबोधक प्रवचनों से समाविष्ट एक सौ पुस्तिकाओं का प्रकाशन निःशुल्क वितरणार्थ किया जा रहा है।

विश्ववंद्य सद्‌गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के दिव्य जीवन-सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसारार्थ परम पूजनीय श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज व्यापक रूप से देश-विदेश में आध्यात्मिक यात्रा करते हुए असंख्य जिज्ञासुओं, भगवद्भक्तों को अपने स्वतःस्फुरित सहज, अतीव गहन प्रेरक प्रवचनों द्वारा दिव्य जीवन का पथ निर्देशित करते रहे। सद्‌गुरुदेव की दिव्यानुभूति के अनुसार स्वामी चिदानन्द जी के प्रवचन एक सन्त-हृदय के सहजानुभूत अन्तर्ज्ञानयुक्त प्रकटित भावोद्गार हैं।

अब तक के उनके कुछ अप्रकाशित व्याख्यानों को पुस्तिका रूप में प्रकाशित कर श्री स्वामी जी महाराज को जन्म शताब्दी के महान् शुभावसर पर उनके पावन श्रीचरणों में सादर सप्रीत भेंट समर्पित करते हुए हम हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तिका 'साधना का मार्ग-दर्शन' अन्य स्थानों में दिये गये पाँच प्रवचनों का संकलन है।

मुख्यालय शिवानन्द आश्रम के अंतेवासियों द्वारा इन प्रवचनों के अभिलेखन, सम्पादन तथा संकलन कार्यों में प्रेमपूर्ण सेवा-सहयोग के लिये हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

परम पिता परमात्मा, हमारे आराध्य श्री सद्‌गुरु भगवान् श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज और परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज के अनन्त शुभाशीर्वाद सब पर रहें!

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

विषय-सूची

प्रकाशकीय 2
१.साधना का मार्ग-दर्शन 4
२.साधना का आधार 11
३.मोक्ष-प्राप्ति के लिए साधना का अभ्यास करें 16
४.अपना सच्चिदानन्द निज स्वरूप प्राप्त करें 22
५. आप दिव्य हैं" 25

६. भगवान् से सम्बन्ध जोड़ें 29

१.साधना का मार्ग-दर्शन

('७.२.९० को भद्रक, उड़ीसा में दिया गया प्रवचन)

दिव्य आत्म स्वरूप! प्यारे भगवत् भक्त, श्रद्धा-विश्वास युक्त सत्संग प्रेमी, सज्जन वृन्द ! आध्यात्मिक जीवन में रुचि रखते हुए, आध्यात्मिक साधना पथ में साधना करते हुए, जीवन के परम लक्ष्य भगवत् प्राप्ति में आगे बढ़ने वाले साधक वृन्द ! समस्त शुभ कार्य भगवत् इच्छा से ही सम्पन्न होते हैं। धन-दौलत, मोटर कार, आदि भौतिक सुख-सुविधाएँ, मकान, पैसा आदि तो स्मगलर को, काला बाजार करने वाले को, मिलावट करने वाले को, चोर-डाकू को, सट्टा खेलने वाले को भी मिल सकता है। गलत दिशा में जाने वालों को प्रपंच के समस्त ऐश्वर्य प्राप्त हो सकते हैं। किन्तु दुर्लभ चीज़ किसी भी प्रयत्न से नहीं मिलती है। वह केवल भगवत् कृपा से, पूर्वकृत पुण्यों से, सन्तों के आशीर्वाद से और ईश्वर अनुग्रह से ही मिलती है। दुर्लभ क्या है? सत्संग और हरि कथा, ये दो चीजें दुर्लभ

हैं जो सबको नहीं मिलतीं, केवल राम कृपा से ही मिलती हैं- 'बिनु सत्संग विवेक न होहि राम कृपा बिन सुलभ न सोहि' सत्संग मिलना अत्यंत दुर्लभ एवं दुष्कर है। आज आपको श्रद्धालु भक्तों, साधकों, भगवत् प्रेमियों और सज्जनों का सत्संग मिल रहा है। मंच पर महापुरुष, यती-संन्यासी और विद्वान् बैठे हैं। कहते हैं 'स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते'। विद्या केवल अपने लिए नहीं है, सब को आदान-प्रदान करके लाभान्वित करने के लिए है।

इस समय यह स्थान वैकुण्ठ तुल्य है, इसके समक्ष इन्द्रलोक भी निकृष्ट है। जहाँ पर श्रद्धालु भक्ति भाव से मिलकर दिव्य भगवद् नाम का उच्चारण करते हैं, गुणगान करते हैं, वहाँ पर विशेष रूप से भगवान् विराजमान होते हैं। जहाँ पर भगवान् विराजमान हैं, वह स्थान वैकुण्ठ कहलाता है। सन्ध्याकाल के मुहूर्त में, सात्विक ग्रहणशील मन के साथ हम सब एकत्रित हुए हैं। इसके लिए भगवान् को हृदय से धन्यवाद देना चाहिए, कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए।

कलिकाल में मानव अल्प आयु का है, शरीर भी इतना हृष्ट-पुष्ट नहीं है जितना हमारे पूर्वजों का रहा है। वे कठिन योग क्रियाओं का अभ्यास करते थे, एक पैर पर खड़े होकर, हाथ ऊपर उठाकर तपस्या करते थे, जप-ध्यान करते थे। श्रीमद्भागवत महापुराण में बालक ध्रुव की तपस्या का ऐसा वर्णन है जिसे पढ़कर मन काँप जाता है। हम तो उनका दशवाँ हिस्सा भी तप नहीं कर सकते। उन दिनों में शुद्ध वातावरण था, आहार शुद्ध था, हवा, पानी में परिशुद्धता थी, कोई भी विषम वस्तु अन्दर नहीं पहुँचती थी। मानव मात्र की आदतें भी अच्छी थीं-सबेरे जल्दी उठकर स्नान करना, व्यायाम, आसन-प्राणायाम करना, भगवद्-उपासना करना। अभी आजकल तो मनुष्य का पूरा का पूरा जीवन कृत्रिम हो गया है। अंग-प्रत्यंग दूषित हो गये हैं। अभी जल, वायु, आहार से विषैली चीजें हमारे अन्दर जाती हैं। ऐसी परिस्थितियों में कठिन योग क्रियाओं का अभ्यास करना असम्भव है। सोलह आना असम्भव है।

भगवान् कहते हैं, 'मानव की समस्याएँ जटिल हैं और शक्तियाँ सीमित हैं हम जानते हैं,' इसलिए अपने श्री मुख से एवं सन्तों के मुख से स्पष्टतः कहला दिया है कि भगवत् प्राप्ति के लिए सुगम मार्ग बनाकर राजमार्ग खोल दिया है और वे अब अप्रकट, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, शुद्ध तत्त्व रूप में रहेंगे। त्रेता युग, द्वापर में भगवान् ने स्वयं मानव लोक में, समाज में अपने स्वरूप को रखकर के मानव की तरह व्यवहार किया। द्वापर युग में भी भगवान् श्री कृष्ण ने अपनी अवतार लीला की। जो भी कुछ करना था सबके
साधना का मार्ग-दर्शन बीच में रहकर के किया। उनका दिव्य स्वरूप सबके लिए दृष्टिगोचर था। किन्तु चतुर्थ युग में कलि के प्रभाव से मानव की दूषित दृष्टि के कारण उनके दिव्य स्वरूप के दर्शन होना असम्भव सा हो गया। अपना दिव्य स्वरूप, जो तीनों युगों में आमने-सामने प्राप्त था, उसको उन्होंने अन्तर्धान कर दिया। ऋषि-मुनियों ने भगवान् के पास जाकर प्रार्थना की, आग्रह किया कि इस कलिकाल में आपकी उपस्थिति एवं आपके स्वरूप के दिव्य दर्शनों की सबसे अधिक आवश्यकता है। आपने मानव को अपने दर्शनों से वञ्चित करके भयंकर परिस्थिति उपस्थित कर दी है।

भगवान् ने कहा, 'नहीं-नहीं ऐसी बात नहीं है, हम अपनी मर्यादा रखते हुए आपको एक रहस्यात्मक तत्त्व बता देते हैं। यद्यपि हमारा स्वरूप कलिकाल में दृष्टिगोचर नहीं होगा। लेकिन स्वरूप से भी अधिक शक्तिशाली तत्त्व जो हमसे अलग नहीं है, अभिन्न है, मेरा ही प्रकट स्वरूप है, उस गूढ़ शक्तिशाली तत्त्व का, मेरे नाम का आश्रय लेकर अभ्यास करके इस कलिकाल में भी मानव मेरे प्रत्यक्ष स्वरूप के दर्शन कर सकेगा।

वेदान्तं इसको 'नाद-ब्रह्म' कहता है, जो अखिल परात्पर ब्रह्म तत्त्व है। जो सर्वप्रथम आद्य-स्पन्दन के रूप में, विश्वात्मक-नाद के रूप में प्रकट हुआ, वह आदि-नाद 'ॐ ॐ ॐ प्रणव' है। यही नाद शब्द परब्रह्म को प्रकट करता है। यह नाम रूप से परे निर्गुण निराकार तत्त्व है। नाद केवल संज्ञात्मक शब्द है। 'तस्य वाचकः प्रणवः' ऐसा महर्षि पतञ्जलि के योग दर्शन में सूत्र है। प्रणव भगवान् के सब नामों में निहित है- विष्णु सहस्र नाम, शिव सहस्र

नाम, सूर्य सहस्र नाम, गणेश सहस्र नाम आदि सब नाम प्रणव से ही प्रकट हुए हैं, आदिमूल प्रणव ही है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के अन्दर प्रणव निहित है। सब नाम सूक्ष्मरूप से, अव्यक्त रूप से प्रणव में निहित है। सब मन्त्र किसी न किसी नाम से युक्त सूक्ष्म एक संरचना है। सब मन्त्रों में प्रणव की ही शक्ति है जो साक्षात् भगवान् की ही शक्ति है। ब्रह्म शक्ति, परा शक्ति प्रणव ही है। भगवान् की दिव्य शक्ति से ओत-प्रोत है हर नाम, इसलिए कहा भी है—

हरेर्नामैव हरेर्नामैव हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं मायामयमखिलम् जगत्।
सत्यं सत्यं पुनर्सत्यं हरेर्नामैव केवलम्।।

साक्षात् सृष्टिकर्ता चतुर्मुख प्रजापति ब्रह्मा से लेकर के तृणपर्यन्त पूरी की पूरी सृष्टि मायामय है, केवल दृश्य मात्र है, पहले भी नहीं थी, बाद में भी नहीं रहेगी। जैसे वर्षा ऋतु में घनघोर बादल के समय खटाक से बिजली चमकती है, पहले भी नहीं थी बाद में भी नहीं रहती। एक क्षण के लिए अन्धकार चला जाता है, प्रकाश आ जाता है, दूसरे ही क्षण फिर अन्धकर हो जाता है। जैसे विद्युत छटा काले मेघ में तात्कालिक है, क्षणिक है, वैसे ही जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड है, वह अनादि, अनन्त, असीमित परात्पर तत्त्व में क्षणिक है।

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्।।

ऐसे सोये हुए महाविष्णु साक्षात् परब्रह्म के प्रतीक हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड का सृजन कैसे हुआ ? अनन्त काल तक भगवान् योग निद्रा में मगन रहते हैं। उनके आँख खोलते ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड का सृजन हो जाता है, आँख बन्द करते ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड का लय हो जाता है। अन्यत्र कहा है कि परब्रह्म आदि नारायण का श्वास आते ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड प्रकट हो जाते हैं और श्वास छोड़ते ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड तत्क्षण विलिन हो जाते हैं। हमारी देश-काल में सीमित बुद्धि के हिसाब से तो हमारे समय से हजारों-लाखों वर्ष बीत जाते हैं। बसंत ऋतु, शिशिर ऋतु, वर्षा ऋतु, शरद ऋतु, गीष्म ऋतु, हेमन्त ऋतु आदि कई ऋतुएँ बीत जाती हैं।

दिनयामिन्यौ सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः ।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुंचत्याशावायुः।।

ब्रह्मा का हिसाब हमारे हिसाब से निराला है। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि मृत्युलोक के इन चार युगों को एक चतुर्युगी कहते हैं। ऐसी एक हजार चतुर्युगी बीतने पर ब्रह्मा जी का एक दिन होता है और एक हजार चतुर्युगी बीतने पर ब्रह्मा जी की एक रात होती है। दिन-रात की इसी गणना के अनुसार ब्रह्मा जी की सौ वर्षों की आयु होती है। हमारे तो लाखों की संख्या में चतुर्युग बीत जाते हैं।

इस कालचक्र से परे जाकर परब्रह्म की अनन्त-असीमित अवस्था को प्राप्त करके सदा के लिए निहाल हो जाना है, आनन्द को प्राप्त करना है। भगवत् प्राप्ति का सुख अनन्त, अपार और अगाध है, यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। जिसके प्राप्त होने पर फिर लौट कर नहीं आते, वह भगवान् का परम धाम है, इसी को प्राप्त

करना है। इसके लिए व्याकरण, संस्कृत, वेद-वेदान्त, दर्शन पढ़ने की जरुरत नहीं है, केवल मात्र दिल की लौ उनकी तरफ होनी चाहिए।

सत्संग द्वारा साधु-सन्तों का आशीर्वाद प्राप्त करके, प्रार्थना करके, नाम में रुचि उत्पन्न करके अभ्यास करना चाहिए। जगन्नाथ भगवान् के श्री चरणों में हमेशा अर्जी अर्पण करें, 'हे प्रभु! हमें नाम में रुचि दो, दूसरा कुछ नहीं चाहिए।' 'कलियुग केवल नाम अधारा' सरल सुगम मार्ग है, सबके लिए प्राप्य है। इसके लिए जात-पांत, ऊँच-नीच, स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े का कोई अन्तर नहीं है। नाम की परिपूर्ण योग साधना सबके लिए है और सब इसके अधिकारी हैं। साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर अधिकारी बनना है, आदि ये सब शर्तें नहीं है। केवल मात्र भगवान् के चरणों में श्रद्धा, विश्वास और रुचि रखनी है।

नाम रटने के लिए सबको एक ही चीज़ चाहिए 'जीभ' और इस जीभ के द्वारा जो गप-शप, गाली-गलौज, झगड़ा-फसाद, अन्ट-शन्ट बोल देते हैं, ये सब नहीं करना चाहिए। माँ सरस्वती की वाणी-शक्ति भगवान् ने हमको दी है तो हम भगवान् का नाम ही रहेंगे, ऐसा निश्चय करना चाहिए।

बच्चा जब जन्म लेता है, उसी क्षण से उसकी तथाकथित जितनी जिन्दगी है, उसकी अन्तिम श्वास अर्थात् मृत्यु की ओर की यात्रा शुरु हो जाती है। हर घड़ी, हर दिन, हर सूर्योदय, सूर्यास्त मृत्यु के और निकट जा रहा है। यह त्रिबार सत्य है। अतः 'उत्तिष्ठत ! जाग्रत ! प्राप्य वरान्निबोधत', सोवो नहीं जागे रहो। भगवान् ने हमें सुनहरी अवसर दिया है, किन्तु सीमित ! दिन प्रति दिन इसकी अवधि घट रही है।

बच्चा एक वर्ष होता है, लोग जन्म दिवस मनाते हैं। क्या जन्म दिवस मनाते हैं? उसकी आयु में एक वर्ष घट गया। मिठाई बाँटते हैं, मार्मिक अर्थ को नहीं समझते हैं। उसकी आयु ७० वर्ष थी तो अब ६९ वर्ष रह गई, अगली बार ६८ रह जायेगी। हर वर्ष वह बढ़ता जाता है, किन्तु आयु एक-एक वर्ष कम होती जाती है। भगवान् ने हमें यह जीवन रूपी अमूल्य अतुल्य पुरस्कार, शरीर के वास्ते नहीं दिया है। केवल खाना, पीना और सोना, इसके लिए हम नहीं आये हैं।

इस मृत्युलोक में हम दो बातों के लिए आये हैं। एक तो पूर्वजन्म कृत कार्यों का कुछ हिस्सा भोग करने के लिए आये हैं। शुभाशुभ कर्मों के फल-रूप सुख-दुःख को भोग कर उनको समाप्त करना है। यह जीवन का गौण उद्देश्य है। मुख्य उद्देश्य क्या है ? भगवान् ने हमको विचार शक्ति, बुद्धि, भावना आदि देकर भेजा है जो कि कीट-पतंग, पशु-पक्षी अन्य जीवों में नहीं है।

यहाँ आ कर प्रकार के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए भगवान् ने सुनहरी अवसर दिया है। चाहें या न चाहें प्राणी मात्र के साथ हमारा व्यवहार, सम्पर्क अनिवार्य है। तो इस व्यवहार में जाग्रत, होशियार, खबरदार रहें किं कर्म बन्धन का बोझा और अधिक नहीं चढ़ जाये। ऐसे कर्म करें, व्यवहार करें कि सदा के लिए बन्धन को समाप्त करते हुए आगे बढ़ते जायें। घर-परिवार, अड़ोस-पड़ोस, मित्र-मण्डली, कार्यक्षेत्र में सबके साथ सात्विक व्यवहार होना चाहिए।

मुख्य उद्देश्य क्या है? आधि भौतिक, आधि दैविक और आध्यात्मिक तापत्रयों से परे जाकर हम ऐसी अनुभूति प्राप्त कर लें जिस अनुभूति से दुःख, शोक, चिन्ता, संकट और दर्द आदि से सर्वदा के लिए आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाये। अत्यन्त सुन्दर तत्त्व, मधुर तत्त्व, आनन्दमय तत्त्व भगवत् तत्त्व जिन्होंने इसका थोड़ा सा भी स्वाद ले लिया है, अनुभव कर लिया है उसके सामने अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के सब तथाकथित सुख फीके लगेंगे। इन्द्र का पद, स्वर्ग का साम्राज्य भी नहीं चाहेंगे। सारा स्वर्ग हमारे चरणों में रख दें, तब भी हम कहेंगे, 'हटाओ, ले जाओ हमें नहीं चाहिए, जिनको चाहिए उन्हें दे दो। हमें जो मिला है वह अतुल्य है, उसके साथ किसी की भी सन्तुलना

नहीं है। ब्रह्मा की पदवी भी हमें नहीं चाहिए।' जिसका आकर्षण कोई भी सहन नहीं कर सकता, इन्द्रलोक की रम्भा, तिलोत्तमा, उर्वशी, मेनका आदि अप्सराओं का सौंदर्य भी श्मशान में जली चिता की राख के समान लगेगा।

भगवान् श्री कृष्ण का मुखारविंद, भगवान् नारायण के दर्शन, भगवान् श्री राम का रूप लावण्य, भगवान् शंकर का दर्शन जिसको एक क्षण के लिए भी हो गया है, उस के बाद वह किसी अन्य चीज़ को देखने की भी इच्छा नहीं करेगा। ऐसे आनन्द सागर में प्रवेश पाकर सदा के लिए मगन हो जाना है। यही निर्भय और मुक्त अवस्था है। इसे पा लेने पर पुनः यहाँ आकर के रोना नहीं पड़ता।

आप केवल मानव ही नहीं है, मानवता के अन्दर आप एक दिव्य ज्योति हैं। मानवता आपके ऊपर चढ़ायी हुई तात्कालिक भूमिका है, पहले भी आप मानव नहीं थे बाद में भी नहीं रहेंगे। आप सदा सर्वदा परब्रह्म परमात्मा के अंश हैं। उनका आपका सम्बंध अनादि अनन्त और नित्य है। जैसे वे दिव्य परिपूर्ण ज्योतिर्मय आत्म तत्त्व है, उसी प्रकार आपके लिए शान्ति, आनन्द, दिव्यता और ज्ञान की कमी नहीं है। लेकिन आप अपने आपको भूल चुके हैं। अपने वास्तविक लक्ष्य को छोड़कर अन्यत्र माया बाजार में जाकर फँस गये हैं। वहाँ से दृष्टि को हटाकर अपनी वास्तविकता पर होश रखो।

आप कौन हैं? किसी कुत्ते, घोड़े, या अन्य पशु का शरीर नहीं हैं, आप मानव शरीर हैं। आपका सच्चा स्वरूप सच्चिदानन्द है, नाम-रूप से परे, देश-काल से परे, जन्म-मृत्यु रहित हैं। आप सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा हैं, यह त्रिबार सत्य है, बाकी सब खोटा है। इस सत्य की उपासना करो, अपने आप का होश जाग्रत करो। बोलो, 'मैं अजर अमर अविनाशी आत्मा हूँ। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, तीनों शरीरों से परे आत्मा हूँ। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय, पंच कोशों से परे सच्चिदानन्द आत्मा हूँ। हमारे लिए क्या कमी है? भगवान् हमारे हैं, हम भगवान् के हैं।'

प्रपंच में हम एक मुसाफिर हैं, यहाँ तो कुछ दिन रहकर चले जाना है। उनके साथ हमारा नित्य का सम्बंध है, भगवान् अपने पास आने के लिए हमारा इंतजार कर रहे हैं। मानव शरीर देकर सुनहरी सुन्दर अवसर दिया, उसको खोकर इधर-उधर भटक रहे हैं। भगवान् को बहुत दुःख होता है बर्दाश्त नहीं होता, इसलिए उन्होंने व्यास भगवान्, वसिष्ठ भगवान्, याज्ञवल्क्य महर्षि, नारद मुनि, महर्षि पतञ्जलि को भेजा। आपको अपनी भूल से जगाकर अपनी तरफ खींचने के लिए बार-बार महापुरुषों, महर्षियों को भेजते रहते हैं।

हमें बार-बार फटकारते हैं, चेताने के लिए आह्वान करते हैं। इस उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी में इतने महापुरुषों को भेजा है, उनके द्वारा दिया गया ज्ञान का भण्डार हमें प्राप्त है। इतने ज्ञान का ऐश्वर्य किसी भी शताब्दी में इस धरती पर किसी भी जनसमुदाय को प्राप्त नहीं हुआ है, जितना हमें प्राप्त है। इसको वृथा नहीं खोना है, अपनाना है, अध्ययन करना है। भगवत् प्राप्ति के लिए सतत प्रयास करना है।

परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमारे कर्म सात्विक और शुद्ध होने चाहिएँ। स्वार्थ, अहंकार और आशा का त्याग करके प्रभु से प्रार्थना करें, 'हे प्रभु! हमें ऐसा वरदान दो कि जब तक हम इस जीवन यात्रा में रहें, हमारे द्वारा सब का भला हो। काया वाचा मनसा प्राणी मात्र की ज्यादा से ज्यादा सेवा कर सकें। हमारे से सभी लाभान्वित होने चाहिएँ, हम देते-देते-देते ही जायें। जहाँ पर कोई कष्ट है तो हम उसका निवारण करें। कोई बोझे से त्रस्त है तो हम उसका बोझा उठायें। कोई रो रहा है तो उसके आँसू पोंछकर के उनके जीवन में प्रकाश ले आएँ। निराशा है तो आशा को ले आएँ। हम भी भगवान् की तरह सर्व कल्याणमय गुणों के केन्द्र होकर स्वार्थ नाम का भद्दापन छोड़ दें। निःस्वार्थी परोपकारी बनकर जीवन में सदा हम देते-देते ही जायें। इस प्रकार का त्यागमय, प्रेममय, परहितकारी जीवन बनाने पर हमारा एक माला का जप, सौ माला जप के बराबर होगा।

धर्म के आधार पर मोक्ष की प्राप्ति होती है। जहाँ पर धर्म है, वहाँ पर एक न एक दिन मोक्ष अवश्यमेव प्राप्त होगा। धर्म का अर्थ है ईश्वर का सामीप्य, आस-पास के प्रत्येक नाम-रूप में उनकी उपस्थिति की अनुभूति। अन्यथा तुम धार्मिक व्यक्ति कहलाते हुए भी धर्म विहीन रह जाओगे। भले ही आप योग-वेदान्त पढ़ो, पूजा-पाठ करो, यात्रा करो, नितनेम करो, उपवास करो, जागरण करो, किन्तु फिर भी भगवान् आपसे उतना ही दूर हैं जितना सूर्य भगवान्, मोक्ष बिल्कुल असंभव है। धर्म मोक्ष का आधार है।

धार्मिक जीवन माने निःस्वार्थ परोपकारमय सर्वहितकारी जीवन। स्वार्थ को त्याग करके, तिलाञ्जलि देकर अच्छा जीवन बनाने के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए, अन्यथा इससे बढ़कर कोई भूल नहीं है, क्योंकि- 'जब चिड़ियन खेती चुग डाली, फिर पछताये क्या होवत है।' इस लिए, 'उत्तिष्ठत! जाग्रत ! प्राप्य वरान्निबोधत ।' अभी चेत जाओ। आज शाम से, कल सवेरे से साधनामय जीवन में उतर जाओ। लेकिन आडम्बर नहीं करना है। पाठ करें, जप करें, पूजा करें किन्तु किसी को भी मालूम नहीं होना चाहिए। व्यक्तिगत आन्तरिक जीवन के लिए केवल मात्र गुप्त साधना करें। उनके और आपके बीच एक रहस्यात्मक सम्बंध है। निरन्तर भगवत् चिन्तन, स्मरण, जप, लिखित जप करें और सर्वसाधारण व्यवहार में परोपकार ही परोपकार करें। मेरे लिए कुछ नहीं चाहिए, मैं औरों के लिए क्या कर सकता हूँ-सदा यही विचार मन में रखें।

धर्म के विपरीत काया वाचा मनसा कोई भी चेष्टा नहीं करनी चाहिए। दूसरों का अहित करने से पहले अपना अहित होता है। यदि आप अपना हित चाहते हो तो धर्म को छोड़ना नहीं, धर्म से बढ़कर कोई ऐश्वर्य नहीं है, धर्म से बढ़कर कोई हितकारी तत्त्व नहीं है, धर्म से बढ़कर आपका कोई मित्र
नहीं है। इस मृत्युलोक में भगवान् का प्रकट स्वरूप धर्म तत्त्व के रूप में विराजमान है।

इसलिए प्यारे भगवत् भक्त, जिज्ञासु, मुमुक्षु साधक, सत्संगी सुनो-

कालक्षेपो न कर्त्तव्याः
क्षीणमायु क्षणे क्षणे।
यमस्य करुणानास्ति
कर्त्तव्यं हरि कीर्तनं ।।

हरि कीर्तन माने भगवत् कीर्तन। अपने इष्ट देवता का कीर्तन, जप, सुमरिन, लेखन करो। भगवत् प्राप्ति का सीधा राजमार्ग है। इसको शुरू करो, बाकी अन्य योगों को सहयोगी बनाओ, लेकिन मुख्य योग है नाम स्मरण— 'हरि नाम गाओ दया अपनाओ, अपने हृदय में हरि को बसाओ' बस ये करना है! नाम-जप का क्या प्रभाव है? भगवान् का नाम गाते गाते हृदय साफ हो जाता है। उनके लिए साफ दिल इतना आकर्षक होता है कि बिना निमंत्रण के दिल में निवास करने लगते हैं।

हरि नाम प्यारा, सबका सहारा,
हरि नाम जप के सुख शान्ति पावो ।

इस जीवन में सुख-शान्ति के वास्ते इधर-उधर देखते हो, इसकी प्राप्ति के लिए सुलभ रास्ता आपके अन्दर ही है।

कहे निवृत्ति, हरि नाम भक्ति,
हरि नाम शक्ति, देवे मुक्ति।

श्री निवृत्ति नाथ महाराज, सन्त ज्ञानेश्वर जी के गुरु थे और ये उनके बड़े भाई भी थे। यह उनकी मूल रचना है जो कि मराठी में है, यह इसका हिन्दी अनुवाद है।

सब हैं समान, सबमें एक प्राण,
तज के अभिमान, हरि नाम गाओ।
हरि नाम गाओ, दया अपनाओ,
अपने हृदय में हरि को बसाओ।

सदगुरु भगवान् और परमपिता परमात्मा की आप पर कृपा हो कि आप सब सदाचारी जीवन जीते हुए अपने साधना मार्ग पर अग्रसर हों और परम लक्ष्य को प्राप्त करें। हरि ॐ तत् सत्।

२. साधना का आधार

(१७.३.८७ को भावनगर (गुजरात) में दिया गया प्रवचन ।)

उज्ज्वल अमर आत्मा ! परम पिता परमात्मा की दिव्य संतान !

इस संघर्षात्मक तापत्रय से पूर्ण और मृत्युमय जगत् में सुख शान्ति नहीं है, अनित्य में कदापि सुख नहीं है। गुरु महाराज कहते थे- 'दिस इज़ दी वर्ल्ड गोविन्दा, ऑफ पेन एंड डेथ गोविन्दा।' अर्थात् यह संसार दुःख-दर्द से भरा हुआ है। तापत्रय क्या है? श्री भगवान् कहते हैं कि यह जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि और दुःख-दोष से भरा हुआ संसार है। आदि शंकराचार्य जी कहते हैं-

जन्मदुःखं जरादुःखं जयादुःखं पुनः पुनः ।
संसारसागरं दुःखं तस्मात् जाग्रत जाग्रत।।

बड़े-बड़े राजमहलों में जन्मे, सब प्रकार की सुख-सुविधाओं के साथ पले राजकुमारों को ज्ञान के उदय होने पर अपने विवेक विचार से मालूम हो गया कि इस प्रपंचपूर्ण संसार में सुख-शान्ति की सम्भावना है ही नहीं, इसका अत्यन्त अभाव है। वह लोग अपनी राजसत्ता को, उसके षड्ऐश्वर्यों को तिलाञ्जलि देकर उस चीज़ के पीछे खोज में गये जो परिपूर्ण है। केवल मात्र जिसमें सच्ची शान्ति, सच्चा आनन्द, परिपूर्णता, निर्भयता और स्वतन्त्रता है तथा उसको प्राप्त करके धन्य हो गये थे।

और फिर इस भूमिका के आनन्द में सबका आह्वान करके, बुला करके इस रहस्य को बताया कि इस मृत्युमय संसार में आकर आप परम शान्ति, परम आनन्द, परिपूर्णता, निर्भयता, स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन इसकी प्राप्ति अल्प वस्तु में नहीं है। परमानन्द की महान् अनुभूति करने के लिए ही भगवान् ने आपको यहाँ भेजा है। जीवन का परमलक्ष्य उस अद्भुत की प्राप्ति, कैवल्य मोक्ष साम्राज्य की प्राप्ति है। इसी की प्राप्ति के लिए आपको पशु-पक्षी के शरीर में नहीं भेजकर मानव शरीर में भेजा है। विचारशील, भावयुक्त विशेष दुर्लभ प्राप्य मानव अवस्था को देकर आपको अनुग्रहीत किया है। हे जीवात्मा ! यहीं पर परमानन्द को प्राप्त कर लो। यहाँ पर हाय-हाय करते, भटकते फिरते और रोते रहने के लिए नहीं भेजा है, यद्यपि इस संसार में यही प्राप्य है। लेकिन भगवान् द्वारा दी गई बुद्धि आदि का सदुपयोग करके ज्ञान प्राप्त करें।

शास्त्र-पुराण, साधु और सन्त सभी का यही सन्देश है, यही घोषणा है कि प्रारब्ध कर्म के अनुसार सुख-दुःख को भोगते हुए इस मृत्युलोक में परमानन्द को प्राप्त करके आप धन्य हो सकते हैं। परम ब्रह्म परमात्मा, परिपूर्ण अवतार, जगद्गुरु के स्थान पर रहते हुए भगवान् श्री कृष्ण ने स्पष्ट रूप से कहा है कि यहाँ अवर्णनीय आनन्द की पूर्ण संभावना है-

सुखमात्यन्तिक यत्तदुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्। (६/२१/गीता)

यह सुख तीनों गुणों से अतीत और स्वतः सिद्ध है, जिसे पुरुषार्थ से प्राप्त कर सकते हैं। भगवान् ने हमारे से कोई भी बात छिपा कर नहीं रखी है। जो कुछ भी हमें समझाना है, स्पष्टतः हमारे सामने रख दिया है। यह संसार दुःखालय है, यह अशाश्वत है। 'दुःखालयमशाश्वतम्' अनित्य है, इसमें सुख नहीं है। इस दुःखमय प्रपंच में, इस अनित्य में तिनका भर भी सुख नहीं है। यह सुख देने वाली वस्तु है, ऐसा बहकाने के लिए तीन गुणों से युक्त माया आपको आकर्षित करती है। मानो पीतल के ऊपर सोने का पालिश करके बड़ा सुन्दर, चमकीला आकर्षक

बनाकर आपको आकर्षित करती है। किन्तु इसके फन्दे में नहीं फंसना ! उल्लू नहीं बनना है। ये माया बाजार है, यह भगवान् की अचिन्त्य शक्ति है, उनका खेल है, उनकी रचना है। इसकी रचना के साथ साथ भगवान् ने आपको विचार शक्ति भी दी है, ज्ञान दिया है।

भारतवर्ष में अज्ञान से हटकर ज्ञान में आने के जितने साधन हैं, सामग्री है, उपाय हैं, ग्रन्थ हैं और सन्त-महात्मा हैं, उतने किसी भी अन्य राष्ट्र में, जनसमुदाय में उपलब्ध नहीं हैं। हमारी मातृभूमि, हमारा भारतवर्ष ज्ञान का भण्डार है। और भगवान् ने अच्छी तरह से कह ही दिया है कि यहाँ पर सच्चा सुख नहीं है, लेकिन यहाँ परमानन्द प्राप्ति के लिए रास्ता है। वो क्या है? जैसा मैंने कहा ध्यानपूर्वक सुनकर उसको किया, तो निहाल हो जावोगे। 'दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया, तीनों गुणों से युक्त मेरी यह माया अति दुस्तर है। मुझे जीवन का लक्ष्य बनाकर जो चेष्टा करके मेरा भजन और उपासना करते हैं, उसे मेरी माया स्पर्श नहीं करती। बस मेरे बन जाओ।'

स्वामी विवेकानन्द जी के गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंस देव जी ने अपनी ही शुभवार्ता में एक बहुत बड़ी बात को बताया है। वह छोटे से ग्राम के निवासी थे। विधिवशात् भगवान् की प्रेरणा से पैदल चलते-चलते कलकत्ता में आकर बस गये (उन दिनों ब्रिटिश साम्राज्य में भारतवर्ष का केन्द्रीय नगर दिल्ली नहीं, कलकत्ता था) वहाँ रहकर वहाँ की वास्तविकता को भी उन्होंने जान लिया। वहाँ पर ग्रीष्मऋतु में कुत्ते पागल हो जाते थे। इसलिए उनसे बचने के लिए नगरपालिका के अधिकारी सड़क पर इधर-उधर फिरने वाले आवारा कुत्तों को पकड़ कर ट्रक में ले जाते थे और उनको मार देते थे। लेकिन किसी परिवार का पालतू कुत्ता हो, जिसके गले में कोई पट्टा बंधा हो, मालिक का नाम-पता लिखा हो तो उसे नहीं छेड़ते थे। रामकृष्ण देव ने यह देख रखा था इसलिए उन्होंने साधकों से कहा, 'देखो, भाई! जो किसी का नहीं है उस कुत्ते को ले जाकर खतम कर देते हैं, लेकिन यदि किसी 'मालिक' का है तो उसे छेड़ते भी नहीं हैं। वैसे ही तुम अपने आपको 'मैं तेरा हूँ' ऐसा मानते हुए भगवान् के बन जाओ, तुम्हारे पट्टी लग जाये कि ये भगवान् का भक्त है तो तुम्हारे निकट माया नहीं आयेगी। इसलिए तुम उनके बन जाओ और बोलो- 'हे प्रभो! तू मेरा है, मैं तेरा हूँ।' भगवान् ने गीता में 'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते' ऐसा कहके एक कदम और आगे जाकर इस रहस्य को खोल दिया। देखो यदि तुम मोक्ष को चाहते हो तो- 'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।' मेरा भजन करो, मुझे अपना लक्ष्य बनाओ। मेरी प्राप्ति के लिए अपना जीवन बनाओ।' यदि आपका जीवन ऐसा हो जायेगा तो अपने कार्य करते रहो। कर्तव्य कर्म में भगवान् कभी भी आड़े नहीं आते। शाश्वत तत्त्व का स्मरण करते हुए जो काम करने हैं उन्हें करते हुए, अपने लक्ष्य को प्राप्त करके कृतकृत्य आप्त काम होकर धन्य बन जाओ। भारतवर्ष के सन्तों की यही यथार्थ घोषणा है।

जब तक धर्म है, सच्चाई है, सदाचार है, उत्कृष्ट पवित्र आचरण है, धार्मिक व्यवहार है तब तक परम पुरुषार्थ को प्राप्त करके मानव धन्य होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है, यह त्री बार सत्य है। जब तक सूर्य-चन्द्र रहेंगे, तब तक आप यहाँ जितने भी बैठे हैं, आप सब यदि धर्म का पालन करते हुए ईश्वर आराधना में लग गये तो आपके जीवन सफल होने में कोई संदेह नहीं है। इन बातों ने बीसवीं शताब्दी की जनता को आशा देकर प्रोत्साहित किया है।

सब लोग ऐसा बोलते हैं, 'भाई ! कलयुग आ गया है, नास्तिकवाद आ गया है, यह भौतिकता प्रधान जगत् है, इसमें हमारे लिए क्या आशा है ? बस सर्वनाश हो गया है, सबके साथ हम भी विनाश में चले जायेंगे।' ये सब निराशावादी विचार हैं, लोग इसमें फंस जाते हैं और जो कर सकते हैं, वह भी नहीं कर पाते हैं। इन सबसे बचकर आदमी को अपना कर्त्तव्य करना चाहिए।

प्राचीन वेद के युग में हमारे महान् ऋषि याज्ञवल्क्य, पराशर, वसिष्ठ, व्यास आदि महापुरुषों को भगवद् साक्षात्कार की जितनी सम्भावना थी, उतनी ही सम्भावना अभी है। बल्कि एक दृष्टिकोण से उससे भी अधिक सुगम

है। क्योंकि ऐसा कहते हैं कि उस युग में बहुत कठिन तपस्या, तितिक्षा, ध्यान आदि करना पड़ता था किन्तु अभी भगवान् की विशेष अनुकम्पा है। आज का मानव बहुत कमज़ोर, अल्प आयु, रुग्ण और क्षीण है, इस लिए सुगम रीति बता दी है। ऋषि-मुनियों ने आन्तरिक अनुभव द्वारा बता दिया है कि कलियुग में भक्ति की प्राप्ति अन्य युगों से ज्यादा सुलभ है। दो-तीन शताब्दियों में जितने भी साधु सन्त आये हैं उन्होंने हमारा आह्वान करके इस महान् उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रेरित किया है।

मैं एक बात का स्पष्टीकरण करना चाहता हूँ कि गुरु महाराज ने अपनी तरफ से कोई भी नई चीज बिल्कुल भी नहीं दी है। वेद-वेदान्त काल के ऋषि मुनियों ने जो ज्ञान दिया था, उसी ज्ञान को आजकल के युग के अनुकूल एक सरल रीति से क्रियात्मक रूप में दिया है। हमको ऐसा बनाकर दिया है जो कि पूरा का पूरा तैयार है।

जैसे पाक शास्त्र में जलेबी, इमरती, गुलाब जामुन आदि बनाना है तो जो-जो चीज़ जिस मात्रा में लेनी है। जिसका मिश्रण तैयार करना है, जितने तापमान पर कढ़ाई के घी में उनको डालना है, चाशनी तैयार करनी है। इन सबके लिए बाजार जाना पड़ता है। सूची के अनुसार सामान खरीदना पड़ता है। आकर रसोईघर में पदार्थ तैयार करना पड़ता है। कितना परिश्रम करना पड़ता है, कितना कष्ट होता है, तब २-४ दिन में जाकर तैयार होता है। खाने की इच्छा है, लेकिन बहुत देर लगती है।

यदि कोई अव्वल नम्बर का अच्छी तरह से बना-बनाया चाँदी की थाली में रसगुल्ला, रसमलाई, जलेबी आपके हाथ में दे दे, तो अब क्या रह जायेगा ? निकाला और मुख में डालकर खा लिया। गुरु महाराज ने भी यही काम किया है। उन्होंने पूरा का पूरा साधना का मर्म निकाल करके, साधना की प्रक्रिया के स्वरूप को बिल्कुल स्पष्ट करके 8-? - 3 - 8 संख्या में क्रमबद्ध करके व्यावहारिक रूप में दे दिया है। गुरु महाराज की किताब को पढ़ते ही साधना के बारे में और खोज करने की जरूरत नहीं है, तुरन्त साधना करने योग्य हो जाती है।

जैसे-प्रातःकाल ४ बजे उठो, स्तवन करो, साधना में बैठो, सन्ध्या बेला में ध्यान करो, जप करो, योगाभ्यास करो। इतना आगे का सोचकर के व्यावहारिक निर्देश दिये। जिस प्रकार पिता की सम्पत्ति-ऐश्वर्य का वारिस पुत्र होता है, उसी प्रकार भारतीय होने के कारण सहजरूप में पुनीत पुण्य भूमि में जन्म लेने से हमको जन्म सिद्ध अधिकार मिल गया है।

प्राचीन काल से सबसे महत्त्वपूर्ण घोषणा यह है कि, 'हे मानव! तुम्हारे जीवन का परम लक्ष्य है भगवद् साक्षात्कार। आत्मज्ञान प्राप्ति के लिए तुम यहाँ पर आये हो। यदि मानवता को प्राप्त करके, महापुरुषों का संग करके भी, तुमने आत्मज्ञान प्राप्त नहीं किया तो 'महती विनष्टी'! इससे बढ़कर कोई भी हानि नहीं है,' ऐसा श्रुति में कहा है।

गुरुमहाराज कहते हैं-प्राचीन काल में क्या मार्ग था? भगवान् प्रेम और भक्ति से प्राप्य हैं। भक्ति को बहुत ऊँचा बताया। 'मोक्षसाधनसामग्रयां भक्तिरेवगरीयसी।' श्रीमद्भागवपुराण में पूरा का पूरा जोर भक्ति पर दिया है। नारद भक्ति सूत्र में भी पूरा जोर भक्ति पर ही दिया है। शांडिल्य ऋषि ने भी भक्ति का मार्ग बताया। ईश्वर अनन्त, अमापनीय, असीमित प्रेम है, युगों से परे विस्तारित प्यार ही प्यार है।

उपनिषदों के ज्ञान जितनी कल्याणकारी अन्य कोई चीज़ नहीं है। ज्ञानाग्नि से ही अज्ञान का दहन हो जाता है। सब शुभाशुभ कर्मों का दहन हो जाता है। ज्ञानी नाम अग्रगण्य होने से हमें ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया।

गुरु महाराज ने दिव्य जीवन के लिए ध्यान योग को मुख्य साधना, मुख्य उद्देश्य, मुख्य प्रेरणा बताया। वेद-विचार, ज्ञान, ध्यान, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साधन चतुष्टय (विवेक, विचार, षट्सम्पत्ति, मुमुक्षत्व) की प्राप्ति

के लिए गुरु से ज्ञान प्राप्त करके निहाल हो जाओ। ज्ञान के बिना अन्धकार नहीं जाता। गीता में भगवान् ने कहा है- 'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।' अविद्या को हटाने के लिए तत्त्वदर्शी ज्ञानी महापुरुषों के पास जाकर समझना पड़ेगा। और महापुरुषों के पास श्रद्धा-भक्ति सहित जाकर सेवाभाव से पूछना चाहिए।

ज्ञान एवं भक्ति की प्राप्ति के लिए ध्यान अति आवश्यक है।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्रतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः।।

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ।।

ध्यान योग के बारे में बार-बार सुनते हैं, ध्यान को अपना लक्ष्य बनायें। सुदृढ़ धारणा से ध्यान भी सुदृढ़ होगा।

ऊँकार बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ऊँकाराय नमो नमः।।

ध्यान योग भी एक प्राचीन प्रणाली है। व्यास भगवान् ने अपने वेदान्त सूत्र में, ब्रह्म सूत्र में, नारद भक्ति सूत्र में, शांडिल्य भक्ति सूत्र में और महर्षि पतञ्जलि ने ध्यान पर बताया है, साक्षात्कार की अन्तिम प्रक्रिया जिसमें साक्षात्कार होता है, वह ध्यान है । ६ अंगों-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा के बाद ध्यान की भूमिका में पहुँचते हैं, उसी के लिए तैयारी है। ध्यान हो गया तो समाधि लग जाती है। अन्ततोगत्वा ध्यान योग प्राप्ति के लिए कोशिश करो चाहे प्रेम मार्ग से करो, चाहे वेदान्त विचार से करो।

किन्तु हरेक व्यक्ति २४ घण्टे ध्यान में नहीं बैठ सकता, ऐसा करना बहुत कम लोगों के लिए साध्य है। साधारण असंख्य कोटि जनता को अपने प्रारब्ध कर्म के अनुसार इस प्रपंच जगत् में रहना होगा। कार्य करते हुए भगवद् प्राप्ति करनी है। आप जानते हैं अग्नि से ही धुआँ हुआ है, इसी प्रकार प्रारब्ध कर्म भी मलिनता से ढके हुए हैं। व्यवहार क्षेत्र में मलिन कार्य करते वक्त, वे कार्य लक्ष्य की प्राप्ति से हमें वञ्चित कर सकते हैं। इसका क्या उपाय है? भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं यह शरीर बिना कर्म किये नहीं रह सकता है, प्रकृति हठात् धकेल के कर्म करवा लेगी।

अतः कर्मक्षेत्र में रहकर के भी कर्तव्य कर्म पूरा करते हुए, फिर भी साधना में निर्बाध होकर भगवान् की ओर कैसे जाना है, उसका रहस्य कई ग्रन्थों में कहकर बताया है। पुराण, भगवद्गीता में खास करके सर्वसाधारण व्यवहार क्षेत्र में कर्म का आध्यात्मिकरण कैसे कर सकते हैं, कर्म को साधना का रूप कैसे दे सकते हैं, इसको समझाने के लिए भगवान् ने रहस्य खोल दिया है, 'देखो भाई ! तुम समझते हो, संसार के प्रपंच कार्य क्षेत्र में कार्य करते हैं, बड़ा भारी गलत विचार है, विपरीत ज्ञान है। यह सब अज्ञान के कारण है जो ठीक नहीं है। यह सब भी मेरा ही स्थान है। वैकुण्ठ, कैलास, गोलोक, साकेत या ब्रह्मलोक की भांति ही यह भी मेरा स्थान है। जितना मैं वहाँ

हूँ, उतना ही मैं इस लोक में हूँ। पूरे के पूरे विश्व ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जहाँ पर मैं नहीं हूँ। सर्वत्र परिपूर्ण रूप में, उज्ज्वल रूप में मैं विराजमान हूँ। आँखें खोलो और मुझे देखो। हे प्यारे! मेरे बुद्ध बच्चे, पूरे प्रपंच में रहकर अपने को बचाकर रखो। इसमें अकिंचन वस्तु-पदार्थ नाम-रूप इसलिए रखे हैं कि जिससे तुमको मेरी याद आ जाये।'

क्योंकि निर्माण कार्य को देखने से निर्माता की याद आती है, सुन्दर चित्र को देखकर चित्रकार की याद आती है। किसी को सुन्दर सूट पहना हुआ देखकर टेलर मास्टर की याद आ जाती है। कैसेट, सी.डी. में अत्यंत सुन्दर मधुर संगीत सुनते हैं तो कहते हैं, गायक का गला कितना मधुर है। भगवान् कहते हैं कि 'केवल मात्र अतुल्य अद्‌भुत जीव रचना मैंने की, किन्तु इसको देखकर के भी मुझे भूल जाये तो क्या कहें, यह तो उल्टा न्याय है।

ऐसा कहकर उन्होंने गीताज्ञानोपदेश में अदभुत अत्यन्त रहस्यात्मक योग को हमें बताया, सिखाया। गीता में १८ अध्यायों में १८ योग हैं। योग क्या है ? जो हमें भगवान् के निकट पहुँचाता है, वह योग है। सुख में भगवान् याद नहीं आते किन्तु दुःख में सभी याद करते हैं। अर्जुन को दुःख, चिंता, शोक, विषाद होने के कारण इसे विषादयोग कहा गया है। भगवान् के चरणों में अर्जुन इसलिए गिरा क्योंकि वह विषाद से घिर गया था। यह विषाद भी भगवान् और सन्तों का संग मिल जाने पर संसार से वैराग्य उत्पन्न करके कल्याण करने वाला हो जाता है। अर्जुन का विषाद ही भगवान् की सम्मुखता होने के कारण 'योग' भगवान् से नित्य सम्बन्ध का अनुभव कराने वाला हो गया।

गीता में कुल १८ योग हैं, जिसमें २ योग अत्यंत महत्त्व के हैं, १०वां एवं ११वां अध्याय। १० वें अध्याय में संकेत मात्र दिया है कि प्रपंच मात्र में जिस किसी सजीव-निर्जीव वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति, गुण, भाव, क्रिया आदि में जो कुछ ऐश्वर्य, शोभा, सौंदर्य, बलवत्ता दीखे, वह विलक्षणता भगवान् के प्रभाव से ही आयी है। सबमें भगवान् की ही विशेषता मानते हुए भगवान् का ही चिन्तन होना चाहिए। पहलवानों में शक्ति के रूप में, वृक्षों में अश्वत्थ, नदियों में गंगा के रूप में, स्थिरता में हिमालय के रूप में वह ही हैं। हर जगह भगवान् अपने ही अस्तित्व को बताते हैं। अर्जुन ने मस्तिष्क से तो ग्रहण कर लिया, किन्तु कहा, 'आपने जो बताया, समझ गया; किन्तु शंका है, मैं इसे प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ।'

भगवान् एक अद्‌भुत कार्य करते हैं, जो चीज़ महान् ऋषि-मुनियों, यक्ष-गन्धर्व, देवी-देवता के लिए दुर्लभ प्राप्य है। उनके प्रकट स्वरूप को कोई नहीं देख सकता है। पहले भी नहीं देखा अब भी नहीं देख सकता है। लेकिन भगवान् दया के सागर हैं, करुणासिन्धु, कृपासिन्धु हैं। आप और हम अर्जुन जैसे ही हैं अतः अर्जुन को केवल निमित्त, बहाना बनाया है। उनका असीम अनुग्रह, अहैतुकी कृपा हमारे ऊपर है। अर्जुन नर है भगवान् नारायण हैं। भगवान् की एक शैली है, 'तुम मेरे मित्र हो इसलिए तुम्हें दिव्य दृष्टि देकर सब कुछ दिखाऊँगा,' ऐसा कह कर अपना विश्वरूप दिखाया और अपने रहस्य को खोल दिया कि 'तुम जहाँ पर भी हो प्रपंच में नहीं हो मेरे ही सान्निध्य में हो, जन्म से लेकर अन्तिम श्वास तक और मेरे सान्निध्य में अनुचित कार्य नहीं कर सकते हो। मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर में आयें तो पूजा-अर्चना ही करते हैं। इसलिए यहाँ जो कुछ भी तुम करते हो वह सब मेरी ही आराधना है।' चिन्तन करें तो परमात्मा का ही चिन्तन करें और जिस किसी को देखें तो उसको परमात्मस्वरूप ही देखें। मनसा वाचा कर्मणा जो कुछ भी आप कर रहे हो उनके सामने कर रहे हो, सब उनके ही चरणों में अर्पण करो ऐसा उन्होंने गीता में कहा है—

'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।'

उन्होंने कहा कि, 'तुम स्वयं ही मेरे अर्पित हो जाओ तो तुम्हारी सम्पूर्ण क्रियाएँ स्वतः मेरे अर्पित हो जायेंगी। मेरे स्वीकार करने से तुम्हारे ऊपर अनुग्रह होगा। प्रपंच नहीं रह जायेगा, व्यवहार नहीं रह जायेगा, सब आराधना बन जायेगा।'

और शंकराचार्य जी जब साधना के बारे में बोलते हैं तो क्या कहते हैं- 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव ना परः ।' एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है, यह संसार मिथ्या है। जीवात्मा और परमात्मा अर्थात् ब्रह्म एक ही है, दोनों में कोई अन्तर नहीं है। जगद्गुरु अद्वैताचार्य, आदि गुरु शंकराचार्य जी ने व्यवहार जगत् को व्यावहारिक सत्ता मानकर जगत् को मिथ्या कहा। उन्होंने यह भी कहा- 'यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभोतवाराधनम्।' अर्थात् कार्यक्षेत्र में समस्त कार्य ही सामग्री है, तुम्हारी पूजा आराधना के लिए। अतः घरेलू व्यवहार, रोटी, साग, सब्जी, भात आदि बनाएँ तो समझें भगवान् के लिए बना रहे हैं, वह आराधना हो जायेगी। हे प्रभो! तुम हमारे साथ हो, जीवन साथी हो, अन्य सबसे वियोग हो सकता है लेकिन उनका - हमारा वियोग हो ही नहीं सकता, असम्भव है। भीतर-बाहर सर्वत्र वे ही हैं। इस प्रकार की निष्काम, भावयुक्त और अर्पित कर्म, भक्ति, ध्यान, वेदान्त विचार की साधना हो जाये तो यही सच्चा जीवन है। अध्यात्म भारतवर्ष का यही सन्देश और आदेश है। हरि ॐ तत् सत्।

३. मोक्ष-प्राप्ति के लिए साधना का अभ्यास करें

(कलकत्ता साधना शिविर में ८ जनवरी १९८८ को दिया गया प्रवचन।)

उज्वल आत्मस्वरूप, परमपिता परमात्मा की दिव्य अमर सन्तान !

भगवद् भक्त, धर्म-प्रेमी, सत्संगी ! आप सब साधना शिविर में साधक के रूप में एकत्रित हुए हैं। साधना का लक्ष्य क्या है, यह समझना है। जन्म-मृत्यु के चक्कर में फँस करके बार-बार इस संसार में आते हैं, जिसमें मृत्यु दुःख है, जरा दुःख है, जन्म दुःख है। अनेक प्रकार के रोग हैं, तापत्रय हैं। आन्तरिक एवं बाह्य दुःख हैं। आन्तरिक स्तर में चिन्ता, शोक, भय, निराशा, अवसाद, अस्मिता आदि हैं। स्थूल शारीरिक-स्तर पर भी दुःख-दर्द हैं, भगवान् हमें समझाने के लिए अवसर देते हैं।

माया का ऐसा प्रभाव है कि समय निकल जाने पर हम दर्द को भूल जाते हैं। शरीर के किसी भी अंग में आदमी को दर्द होता है, तो हू-हू, हाय-हाय करके जोर-जोर से चिल्लाता है। इतनी असहनीय वेदना होती है कि डॉक्टर को इलाज के लिए मारफिया का टीका लगाना पड़ता है। वेदना इतनी तीव्र होती है कि कहता है, 'हे प्रभो! ऐसी नारकीय यातना मेरे दुश्मन को भी मत देना।' जब दो-चार दिन में ठीक हो कर घर आ जाता है, तो यातना को भूल जाता है, दर्द की स्मृति ताजी नहीं रहती, वेदना का नामोनिशान नहीं रहता। जो गलती करने से वेदना आयी थी, वैसी ही गलती फिर दुबारा करने लग जाता है।

सिर से पैर तक विविध प्रकार के दर्द और पीड़ाएँ हैं। मनुष्य के लिए दर्द की लिस्ट बनाकर रखें तो आश्चर्य होगा कि इस दर्द भरे संसार में वह क्यों आना चाहता है? सिर, आँख, कान, नाक में दर्द हो सकता है। मुँह में छाले हो जाएँ, गले में टाँसिल हो जाएँ तो कोई भी चीज निगल नहीं सकते। गरदन में यदि लचक आ जाए तो

इधर-उधर, ऊपर-नीचे गरदन घुमा नहीं सकते, शरीर में सिर एक कितना छोटा हिस्सा है, किन्तु इसमें भी कितनी अधिक असहनीय पीड़ायें हो जाती हैं। दाँत-दर्द को देखें, इतनी हिफाजत से रखने पर भी, जब दाँत में दर्द होता है तो इसे निकलवाने के लिए दाँतों के डाक्टर के पास जाते हैं। डाक्टर कहता है कि दाँत नहीं निकलवाना चाहिए, दवाई से ठीक करने की कोशिश करना अच्छा है, किन्तु रोगी कहता है, 'नहीं, नहीं, कैसे भी हो, दाँत बाहर निकाल दो।' कान का दर्द असहनीय होता है, जिसको हुआ हो वही जानता है, सिर दर्द की पीड़ा को कौन नहीं जानता। संकट मोचन हनुमान की प्रथम पंक्ति याद आती है, '**को नहीं जानत है जग में कपि संकट मोचन नाम तिहारो**'**।** सिर दर्द को न जानने वाला कोई इनसान नहीं, कोई ऐसा नहीं जिसको यह हुआ न हो। आज के जमाने में सिर दर्द के पचासों कारण हैं। दर्दों की गिनती असीम है। कभी कन्धे में पीड़ा हो जाती है, कभी-कभी नाखून पकने पर पीप पड़ जाती है, फूल जाता है, व्यक्ति हाय-हाय करता रहता है। तमिल में इसे विंड, विंड कहते हैं। असहनीय पीड़ा से चसके पड़ने लगते हैं, सो नहीं सकता। पेट की तरफ़ जाएँ तो कोलाइटस और एपेण्डिक्स अत्यन्त पीड़ा देते हैं। बिना चबाये जल्दी-जल्दी खाया तो दर्द! कभी-कभी वायु की चीज खाने से वायु का गोला बन कर आँतों में अटक जाता है, तो बस हिलना-डुलना बन्द, तब तक उठ-बैठ नहीं सकते, जब तक वायु वहाँ से हट नहीं जाती। संक्षेप में कहें तो, हमारे शरीर के हर अंग का दर्द हमें असहनीय कष्ट देने की शक्ति रखता है, हम सभी को इसका अनुभव है, किन्तु जैसे ही कष्ट दूर हुआ, हम आराम से उसे भूल जाते हैं और इस संसार को सुखमय समझने लगते हैं।

आश्चर्य की बात यह है कि भगवान् स्वयं कहते हैं कि यहाँ पर सुख नहीं है, दुःख और कष्ट हैं। भगवान् बुद्ध ने भी यही कहा है। किसी भी प्रान्त का सन्त, चाहे तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, बंगाल, आसाम, महाराष्ट्र, गुजरात, यू. पी., पंजाब या राजस्थान का हो, किसी ने भी यह नहीं कहा कि जगत् में सुख-शांति है, हम यहाँ पर मजा कर सकते हैं। फिर भी हम यहाँ सुख की प्रतीक्षा करते हैं। सुख के लिए कई प्रकार के प्रयत्न और प्रबन्ध करते हैं। इससे बढ़ कर और कोई मूर्खता नहीं, आश्चर्य नहीं। मानव पढ़ा-लिखा, विद्वान्, आदर्शवादी, यूनिवर्सिटी से डिग्री प्राप्त किए हुए, सब कुछ जानता है, किन्तु मन के अन्दर उल्टी भ्रांति, उल्टा भ्रम है।

वेद के काल, भागवत पुराण के काल, हजारों कालों से लेकर अब तक के जितने भी ज्ञानी, सन्त, भक्त, योगी, तपस्वी आये हैं, सबने यही कहा है संसार में सुख नहीं है। संसार दुःखमय है, यह तो मानो एक बड़े जंगल के समान है, रेगिस्तान है, सुख मिलेगा नहीं, धोखा खाएगा और मर जाएगा। यह तो मृगमरीचिका है। जंगल में प्यास के मारे मृग तपती बालू में, रेत में पानी ढूँढ़ता है, बड़ा व्याकुल रहता है। तृषा से संत्रस्त मृग दूर से पानी देखता है और पीने के लिए भागता-फिरता है, रेगिस्तान में पानी का दर्शन तो होता है, किन्तु वास्तव में पानी वहाँ नहीं होता है। सूरज की किरणें तपे हुए बालू पर पड़ती हैं, तो गरम हवा की तरंगों से वहाँ जल दिखाई देता है। जितनी-जितनी दूर मृग पानी के लिए दौड़ता है, उतनी-उतनी ही दूर पानी दिखाई देता है। प्यास बहुत लगती है, गला सूख जाता है, साँस भी नहीं ले सकता, जिह्वा बाहर आ जाती है। अन्त में भागते-भागते थक जाता है। आगे नहीं जा पाता और गिर जाता है। हिरण की जैसी दुर्दशा रेगिस्तान में होती है, वैसी ही दशा संसार में हमारी होती है। हमारे पूर्वजों ने, सन्तों ने, ज्ञान-योगियों ने अजमा कर, विवेक से अनुभव कर लिया है कि यह सब भ्रम है। बुद्धिमान व्यक्ति इसमें खोज करने की कोशिश नहीं करता कि इस वस्तु में सुख नहीं मिला तो दूसरी चीज में मिलेगा, ऐसा नहीं करता।

जब विषय वस्तुओं से इन्द्रियों का संयोग होता है तो इन्द्रियाँ हमारे मस्तिष्क में संवेदनाएँ पहुँचाती हैं, जो हमारे मन को सुख या दुःख का, अच्छे या बुरे का अनुभव कराती हैं। विषयों की विभिन्नता हो सकती है। विषयों से आने वाली जो संवेदनाएँ हैं, उसमें विभिन्नता हो सकती है, लेकिन जो प्रक्रिया है वह एक ही प्रकार की है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तो अन्दर हैं, बाहर नहीं हैं। कर्मेन्द्रियाँ बाहर हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध अन्दर हैं, यदि वह सक्रिय हैं तो संवेदनाएँ अन्दर जा कर अंकित होंगी। यदि सक्रिय नहीं है, तो वहाँ होते हुए भी आप वहाँ पर नहीं होंगे। मस्तिष्क में वह केन्द्र बिन्दु सो जाता है, तो कान ठीक होते हुए भी आप कुछ ग्रहण नहीं कर सकते।

बड़ी अच्छी सुगन्धित केसर, इलायची, काजू-किशमिश, बादाम, चीनी डालकर बनायी हुई खीर आपको कोई एक कटोरी या कप भर कर खाने को दे, तो आप एक चम्मच स्वाद लेकर नहीं छोड़ते हैं, पूरा का पूरा खत्म कर देते हैं, और भी अधिक लेने की चाह करते हैं। जब तक उसका स्वाद नहीं लिया, तब तक तो कोई बात नहीं है। स्वाद लेने के बाद तो दुबारा, तिबारा यहाँ तक कि जन्म भर स्वाद लेते रहने की आदत पड़ जाती है। मन में तृष्णा बढ़ेगी, मन अशान्त रहेगा, तृप्ति नहीं होगी। स्वयं खीर बनाने के लिए प्रयास करेंगे। बाज़ार से सामान खरीद कर खीर बनायेंगे और सेवन करेंगे, मन की अशान्ति से बढ़ कर कोई वेदना नहीं है। असन्तोष, अशान्ति, अतृप्ति हम सब मनुष्यों को खा रही है। अशान्त मन के लिए सुख-भोग असम्भव है, बहुत दूर है। इसको अच्छी तरह जानकर कि ये परिस्थितियाँ, मनुष्य की इन्द्रियों और उनसे सम्बन्धित जो भोग की वस्तुएँ हैं, उनके बीच में संस्पर्श होने से उत्पन्न होने वाला आन्तरिक अनुभव, पूरा का पूरा नस-नाड़ियों का शारीरिक मामला है, भगवान् ने इस बारे में हमको स्पष्ट जागृति दे दी है। भगवान् के इस एक इशारे को हमेशा के लिए अपने मन में रख लें तो किसी भी वस्तु से संसर्ग नहीं करेंगे, गुलाम नहीं बनेंगे। कोई भी वस्तु पदार्थ हमें वश में नहीं कर सकता, अशान्ति नहीं दे सकता, क्योंकि हमारा मन उस तरफ़ जायेगा ही नहीं। मन में आशा इच्छा रहेगी ही नहीं।

एक जगदूरु ने कड़े शब्दों में इतना स्पष्ट कहा है, 'कहना तो नहीं चाहिए, फिर भी यह आमतौर पर सत्य है। जो अमूल्य तत्त्व को, अमूल्य सत्य को, अमूल्य ज्ञान की मूल्यता को नहीं जानता है, वह समझता ही नहीं कि यह कितना अमूल्य है। उसके सामने इस गीत को गाना बेकार है, तुम ही मूर्ख बनोगे। जिसके अन्दर रस नहीं है, समझ नहीं है, ग्रहण करने की शक्ति नहीं है, उसके सामने तुम ज्ञान की बात करोगे तो कहेगा, 'बड़ा आया है हमें समझाने के लिए, चल-चल अपना काम कर।' हमें अपना सा मुँह लेकर आना पड़ेगा। अशान्ति से बढ़ कर कोई वेदना नहीं है, जगदुरु ने कहा, 'सूकर के सामने मोती फेंको तो वह क्या जानेगा कि मोती क्या है? हो सकता है आप पर हमला करके आपको घायल कर दे,' ऐसी कठोर बात जगदुरु ने कही है।

एक अच्छे संगीतकार, अच्छे कलाकार व्यक्ति से एक ऐसी लड़की की शादी कर दें, जिसकी उसमें जरा भी रुचि नहीं है। उसके गाते ही कहेगी, 'अरे! ये क्या? सिर दर्द कर दिया, बन्द करो इसे !' मन की अशान्ति से बढ़कर कोई वेदना नहीं है। वह कहेगा, 'हे प्रभो! हमको ऐसे राजा-महाराजा के दरबार में मत ले जाओ जो हमारी कला और ज्ञान के रस को नहीं समझता हो।' पुराने जमाने में लड़के-लड़की के परस्पर देखे बिना, माँ-बाप के कहने से शादी हो जाती थी। एक बहुत सुन्दर कलाकार है जो उच्च कोटि के चित्र बनाता है किन्तु पत्नी अन्धी है, देख नहीं सकती, परख नहीं सकती हमारी स्थिति भी ऐसी ही है।

भगवान् ने तात्त्विक सत्य को स्पष्ट रूप से हमारे सामने रखा है। इस संसार के प्रपंच में जितने भी विषय और वस्तुएँ हैं, उनसे सुख की चाह की तो अपना सा मुँह लेकर आना पड़ेगा। जगदुरु ने कहा है कि सूकर के सामने मोती फेंको तो वह क्या जानता है? उल्टा हमारे ऊपर ही हमला करेगा। मानव लोक में पंचेन्द्रिय और उनके विषय वस्तु के सम्पर्क से मनुष्य के लिए, नकारात्मक एवं सकारात्मक अनुभव स्वतः सुलभ हैं। जैसे कान द्वारा विविध प्रकार के शब्द सुनना, अच्छी-बुरी बात सुनना। स्पर्श से कड़ी या मुलायम कैसी वस्तु है इसकी जानकारी होती है। आँखों से रूप-आकृति का ज्ञान, रसना से कड़वे, खट्टे, मीठे रस का अनुभव, नासिका से दुर्गन्ध-सुगन्धि का ज्ञान। अज्ञानियों के सामने सूकर के समक्ष मोती फेंकने वाली स्थिति होती है।

आप जानते ही हैं कि हमारी संस्कृति वैदिक है, वैदिक ज्ञान ही आदि मूल है। ज्ञान, आदर्श और कर्त्तव्य मार्ग दर्शन सब वेदों में है। व्यवहार के बारे में, कर्मकाण्ड के बारे में जन्म जनेऊ से लेकर दाह संस्कार तक का वृहद् ज्ञान इसमें भरा हुआ है।

परात्पर तत्त्व के बारे में, ईश्वर के बारे में, उनकी अनुभूति के बारे में ऊँचे से ऊँचे ज्ञान को ज्ञानकाण्ड कहते हैं। तत्त्ववेत्ताओं ब्रह्मज्ञानियों ने ब्रह्मज्ञान द्वारा अपरोक्ष अनुभव को प्राप्त करके उसी अनुभव को हमारे लिए संग्रहीत किया है, जिसे उपनिषद् कहते हैं। कई उपनिषद् बहुत कठिन हैं। सर्वप्रथम ईशावास्योपनिषद् इतना छोटा है कि एक दिन में कंठस्थ कर सकते हैं। इसकी संस्कृत भाषा सरल और सुगम है। फिर भी सीधा-सीधा उपनिषद् पढ़ने में मुश्किल है। उपनिषद् में जितने भी अनुभव हैं, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व हैं उनको समझाने के लिए सरल बनाकर प्रश्नोत्तर के रूप में सुगम दृष्टांत देकर सूक्ष्म बात को समझाने के लिए भगवद्गीता की प्राप्ति हुई है। यह अद्‌भुत ग्रन्थ अवर्णनीय है और अत्यन्त उपयोगी है। भगवद्गीता में जीवात्मा-मानव के, संसार में दिन प्रतिदिन की परिस्थितियों के जो अनुभव हैं उसके बारे में स्पष्ट और निश्चयात्मक रूप में, वार्ता में दिया गया है। इस ज्ञान को प्राप्त करके भी हम समझते हैं कि संसार में सुख मिलेगा। कैसी विचित्र बात है!

भगवान् ने कहा है, '**ये हि संस्पर्शजा भोगा।**' इसमें भोग शब्द तटस्थ है। भोग सुख का भी हो सकता है, भोग दुःख का भी हो सकता है। भोग हर्ष का भी हो सकता है, शोक का भी हो सकता है। संस्पर्श से जो अनुभव जीवात्मा को मिलता है 'दुःखयोनय एव ते' एव माने केवल मात्र, सिवा इसके अन्यथा नहीं हो सकता। ये केवल मात्र दुःख का ही स्रोत है। दुःख का ही जड़ मूल है।

'**ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते**' और अन्त में कहा 'न तेषु रमते बुधः' जो अकलमन्द, बुद्धिमान आदमी हैं, इनमें रमते नहीं हैं, इसके पीछे नहीं जाते हैं। क्योंकि उन्होंने अच्छी तरह से जान लिया है कि यह शुरू में रुचिकर और अन्त में दुःखदायी हैं। हमें रुलाएँगे कि हमने ऐसा क्यों किया, कष्ट उठाना ही पड़ेगा।

मान लो कि कोई व्यक्ति फेक्टरी खोल करके, कई प्रकार के सामान बनाकर बेचता है। खरीदने वाले कई बार धोखा खाते हैं। उनका मित्र आता है, किसी चीज़ को पसन्द करके कहता है कि हमें ये वस्तु चाहिए। मित्र होने की वज़ह से वह कहता है, 'नहीं यार! ये चीज रद्दी है, तुम्हारे लिए ठीक नहीं है, तुम ये वाली चीज़ ले लो।' इसी प्रकार भगवान् ने प्रपंच में जितने वस्तु-पदार्थ हैं उनका वर्णन किया है। इन्द्रिय और उसके संस्पर्श से जितने भी भोग पदार्थ हैं केवल मात्र दुःख का ही जड़-मूल है। यही सत्य है, यही वास्तविकता है कि इसमें सुख का एक कण मात्र भी नहीं है। तिनका भर भी सुख नहीं है। यह सब कहने का मतलब है कि तुम्हें परमात्मा की प्राप्ति के लिए नर जन्म का बड़ा सौभाग्य देकर संसार में भेजा है तो तुम क्षुद्र पदाथों की तरफ क्यों जाते हो? इनमें दुःख ही दुःख है, सच्चा सुख किंचित् भी नहीं है। आपको परम सुख की प्राप्ति के लिए भेजा गया है, इन वस्तुओं के लिए नहीं।

जितने भी उपनिषद, पुराण, महाभारत, भागवत, रामायण आदि ग्रन्थ हैं, सभी यही वर्णन करते हैं कि समस्त वस्तु-पदार्थ दुःखदायी हैं। भूल से भी इनके जाल में मूर्ख बनकर फंसना नहीं है, फिर निकलना कठिन होता है। शुरू में यह सब मीठा और अमृततुल्य लगता है अन्त में विष समान है। प्यारे, यदि तुम मोक्ष को चाहते हो तो 'विषयान् विषवत् त्यज' विष समझकर इसको त्याग दो। बुद्धिमान व्यक्ति यह प्रयोग करके देखने का प्रयास नहीं करता कि इस वस्तु में सुख नहीं मिला तो दूसरी वस्तु में मिल जायेगा। ऐसा सोचता भी नहीं है।

चतुर गृहलक्ष्मी भात बनाती है तो भात बना है कि नहीं, इसके लिए सारे भात को नहीं देखती। चम्मच से एक दाना निकालती है, यदि भात नहीं पका है तो ५-१० मिनट के लिए पकने देती है, और पक जाने पर नीचे उतार देती है। भगवान् ने कह दिया कि संसार में सुख नहीं है तो मानव को समझ लेना चाहिए।

भगवान् के एक मात्र संकेत को हमने समझ लिया तो हमारी जीत हो गयी। प्रपंच हमें हिला नहीं सकता, उल्लू नहीं बना सकता। तब हम परम आनन्द, अवर्णनीय दिव्य आनन्द को प्राप्त करेंगे। भगवान् ने अच्छी तरह बता दिया है कि यह सब एक दम रद्दी है, तुम जैसे बुद्धिमानों के लिए नहीं है। केवल मूर्ख अज्ञानी, अविवेकी, विचारहीन व्यक्ति ही प्रपंच में रोकर फंसकर फिर बाहर आये, लेकिन बुद्धिमान इसमें क्यों जायेंगे?

उत्तिष्ठत ! जाग्रत ! प्राप्यवरान्निबोधत् ! परम आनंद की प्राप्ति भगवान् ने तुम्हारे लिए बनायी है, भगवान् को प्राप्त करके निहाल हो जाना चाहिए। उपनिषदों की बातों को मन में रखकर, उसकी तरफ जाना बुद्धिमत्ता है। यह पंचेन्द्रियाँ हमें अपने जाल में फँसाने के लिए, संसार-प्रपंच में उलझने के लिए और हमें मूर्ख बनाने के लिए नहीं दी गयी हैं। 'नयन दिया दर्शन करने को श्रवण दिया सुनो ज्ञान रे।' नासिका आपके चरण कमलों में तुलसी की सुगन्ध ग्रहण करने के लिए दी है। भगवान् ने हमें जो भी शक्तियाँ, क्षमताएँ दी हैं उसका प्रयोग गलत दिशा में न होकर सही सम्यक दिशा में धार्मिक जीवन, ईश्वर चिंतन के लिए करना चाहिए। साधारण दिशा से परिवर्तित करके, हमारी अभी की परिस्थितियों में भगवान् ने हमें जिन कामों के लिए भेजा है, उसे नहीं करके प्रपंच में फँस गये तो जीवन खतम हो जायेगा। दिन-रात, सप्ताह-पक्ष, महीने-वर्ष निकलते जायेंगे।

'दिनयामिन्यौ सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः ।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः ।।'

समय का नाश, जीवन का विनाश। आयु बीतती जा रही है, आशा की श्रृंखला खतम नहीं होती। माया एक खतरनाक शक्ति है, हमें काल के प्रवाह को जानने नहीं देती। हम असावधानी में ही जकड़ लिये जाते हैं, फँस जाते हैं, फिर बाद में पश्चात्ताप होता है कि हमने अपने जीवन का ठीक प्रकार से उपयोग नहीं किया।

यहाँ पर जो भी साधक बनकर साधना शिविर में आया है, वह स्वयं स्वतः जिज्ञासु और मुमुक्षु है। वह मुमुक्षु इसलिए है कि उसने स्वाध्याय किया है। सत्संग में श्रवण करके मालूम कर लिया है कि संसार दुःखमय है। यहाँ के वस्तु-पदार्थों में सुख नहीं है, इसके जाल में नहीं फंसना चाहिए। इसमें फंस गये तो रोएंगे, दुःख के ही भोग भोगते जायेंगे। आखिर में मृत्यु के समय अपना जीवन खो देंगे। जो जाग्रत हो गया है वह क्या करेगा? इस प्रपंच से छूटने की पूरी कोशिश करेगा। बन्धन से छूटने की जो आकांक्षा रखता है, उसे मुमुक्षु कहते हैं। अभी तक हमारी अज्ञान की अवस्था है। हम वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते हैं। इतना ज्ञान सुनने और समझने के बाद भी हम मूर्ख, उल्लू और मन्दबुद्धि होकर जी रहे हैं। ज्ञान को स्वीकार कर हृदय में धारण करके जीवन नहीं बिता रहे हैं। ज्ञान को जानते हुए भी अज्ञान में जीते हैं। अज्ञान को हमेशा के लिए खतम कर देना चाहिए। हमें केवल ज्ञान चाहिए और हमेशा के लिए चाहिए। उसी ज्ञान के अनुकूल अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए। ऐसी इच्छा रखने वाले को जिज्ञासु कहते हैं।

ज्ञान के लिए जिनके अन्दर पिपासा है, ज्ञान चाहने वाला जिज्ञासु, बन्धन से मोक्ष चाहने वाला मुमुक्षु है। जो जिज्ञासु और मुमुक्षु है वही ज्ञान प्राप्ति के लिए साधना करेगा, बन्धन को तोड़ने के लिए साधना करेगा। इस लक्ष्य प्राप्ति के लिए किये जाने वाला प्रयत्न और उसके अनुकूल सामग्री, इन दोनों को ही साधना कहते हैं।

आध्यात्मिक जीवन में साधक के लिए लक्ष्य ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान की प्राप्ति, ईश्वर साक्षात्कार है। इससे ही हम बन्धन से परे जाकर सदा सर्वदा के लिए जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि और दुःख-कष्टों से मुक्त हो जायेंगे। भय, शोक, चिंता से मुक्त हो जायेंगे। इस प्रपंच, दुःख, शोक के स्थान पर हमारे अन्दर शान्ति और आनन्द ही आनन्द होगा। यही मोक्ष का स्वरूप है, इसी को प्राप्त करके कामयाब होना है। प्रपंच के जितने भी तापत्रय कायिक वाचिक, मानसिक पीड़ा संकट हैं, उनसे मुक्त होकर अवर्णनीय आनन्द और शान्ति को हमेशा के लिए अपने अन्दर स्थापित करना है। यही वास्तविक लक्ष्य है, सर्वोत्तम लक्ष्य है। यही आध्यात्मिक जीवन का सार तत्त्व है, शान्ति और परम आनन्द को पाने की आकांक्षा करना और उसे पाने का प्रयास करना, उसमें लगे रहना और अन्ततः प्राप्त कर लेना।

भगवद् अनुग्रह से आप सब यहाँ आये हैं, इस मार्ग के विषय में आपको रुचि भी है। यह परम सौभाग्य है, इसे व्यर्थ नहीं खोना चाहिए। यह अवसर नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि मन कभी भी बदल सकता है। जिज्ञासु, मुमुक्षु, भक्ति परायणता बनाए रखने के लिए कोशिश करनी चाहिए।

रामकृष्ण परमहंस जी ने कहा है मन का चलन विचित्र है, इसका स्वभाव घर की मक्खी जैसा है। कश्मीर से अच्छा शहद लाकर शिवरात्रि की पूजा के लिए रखा, उस पर बैठ जायेगी। किसी बच्चे ने टट्टी कर दी, उस पर बैठेगी। कोई सड़ी चीज है, मरा हुआ चूहा है उस पर बैठ जायेगी। चन्दन घिस रहे हैं, उस पर बैठ जायेगी शुद्ध-अशुद्ध वह नहीं जानती है। इसी प्रकार हमारा मन भी बहुत ऊँचे से ऊँचा चला जाता है और नीचे से नीचे भी चला जाता है। हमें इसमें हमेशा सावधान रहना चाहिए। जब तक ऊँची स्थिति में कायम नहीं हो जाते, साधना नहीं छोड़नी चाहिए। मन को ऊँचे स्तर पर रखने के लिए साधना के जितने अंग-प्रत्यंग हैं-वेदान्त विचार, प्रार्थना, गीता श्लोक इत्यादि पढ़ते रहना चाहिए। आन्तरिक साधना के लिए जप, भजन-कीर्तन, पूजा-पाठ, चिंतन-मनन, स्वाध्याय, साधना शिविर आदि करते रहना चाहिए। जिससे हमारा मन अनित्य, अशाश्वत, मलिन वस्तुओं की ओर न जाकर हमेशा ऊर्ध्वगामी भगवद् दिशा की ओर दृढ़ता से उन्मुख होता रहे, कभी भी निम्न गामी न हो।

ऋषि विश्वामित्र बड़े तपस्वी थे। उन्हें भूख, प्यास और निद्रा पर नियन्त्रण था, किन्तु वह बहुत जिद्दी प्रकृति के थे। अपनी तपस्या के बल पर अपने एक भक्त के वास्ते उन्होंने दूसरे स्वर्ग का भी निर्माण कर लिया। भक्त को देवलोक भेजने के लिए सबने मना किया, किन्तु उनके मन में एक ही जिद्द थी, 'नहीं-नहीं मैं अपनी तपस्या के बल पर इसे स्वर्ग भेजूंगा।' देवताओं ने देखा यह अयोग्य आदमी है, धक्का देकर नीचे गिरा दिया। वह खत्म ही हो जाता किन्तु गिरते समय जोर-जोर से चिल्लाया। विश्वामित्र ने देखा हमने इसको ऊपर भेजा था, यह नीचे कैसे आ रहा है, उसे तप बल से आदेश दिया, 'ठहरो-ठहरो!' और वह बीच में ही लटक कर त्रिशंकु बन गया। इतना प्रभाव, इतनी सिद्धि प्राप्त किये हुए विश्वामित्र ने दूसरा स्वर्ग तो बना डाला, किन्तु अहं पर विजय नहीं पा सके।

इसी प्रकार से भरत पूरा अरण्य जीवन व्यतीत करते हुए बड़े तपस्वी ज्ञानी ऋषि थे। एक छोटे से हिरन पर दया आ गयी। यह ठीक है, दया आना सहज है। ऋषि के लिए इसमें कोई गड़बड़ बात नहीं है। दया आते-आते माया ने उसको ममता की ओर घुमा दिया। साधना में गायत्री मन्त्र के लिए बैठे, 'ॐ भूर्भुवः स्वः। हिरन कहाँ चला गया उसको घास मिला कि नहीं, हिरन भूखा होगा।' उनका भजन-ध्यान सब हिरन की तरफ चला गया। आहिस्ते-आहिस्ते दया, माया के रूप में ममता की ओर इतनी अधिक रही कि देहावसान के समय स्मृति हिरन की तरफ चली गयी। नतीजा यह हुआ कि अगला जन्म हिरन का मिला। किन्तु पिछले जन्म की तपस्या और ज्ञान का संस्कार इतना प्रबल था कि उन्हें ज्ञात हो गया मेरा पतन हो गया है। यदि ममता नहीं होती तो पूर्व के ऋषि शरीर से ही मोक्ष प्राप्त कर लेता, हिरन की योनि में नहीं आना पड़ता। इसके बाद जब दूसरा जन्म मिला तो पूर्ण रूप से तपस्या में लग गये, जागृत रहे, जड़-भरत कहलाये।

गुरुदेव कहते हैं कि भले ही आप योग की उच्चतम स्थिति पर पहुँच गये होओ, तो भी स्वयं को योग की सीढ़ी के प्रथम डण्डे पर ही समझो। अपने आप को पहली कक्षा का विद्यार्थी ही समझते रहो। यह इस लिए अच्छा है क्योंकि इस तरह आप कभी लापरवाह और असावधान नहीं रहोगे। और अन्त तक सावधान रहना ही अच्छा है। इसी लिए सब चेतावनी देकर जागृत रहने के लिए कहते हैं। विवेकशील बुद्धि द्वारा मन को नियन्त्रित रख कर सदा साधना में तत्पर रहो। सच्चिदानन्द भगवान् और सद्गुरुदेव का आशीर्वाद आप सब पर बना रहे।

हरि ॐ तत् सत्।

४.अपना सच्चिदानन्द निज स्वरूप प्राप्त करें

(*कोलकाता में १२.१.१९८८ को दिया गया प्रवचन ।)

आज भारतवर्ष की एक महान् विभूति एवं उज्ज्वल चिरस्मरणीय एक ऐतहासिक व्यक्ति की १२५वीं शुभ जन्म जयन्ती का महोत्सव मनाने के लिए आप सब एकत्रित हुए हैं। आधुनिक जगत् के इस नवीन युग में भारतवर्ष का प्राचीन धर्म, संस्कृति, वेद-उपनिषद् और ऋषि-मुनियों द्वारा जीवन के लिए दिया गया उत्तमोत्तम आदर्श, जो इतिहास के हो रहे उथल-पुथल से अस्त हो गया था। भारतवासियों के अपनी पूर्व की मूल्यताओं की अवहेलना करने से तथा पाश्चात्य विचार धारा को ग्रहण करने की स्वीकृति देने से सब में उदासीनता आ गयी जिसके कारण वह अपने सच्चिदानन्द निज-स्वरूप को प्राप्त करने के लक्ष्य से विमुख से हो गए थे। ऐसे समय में स्वामी विवेकानन्द जी ने भारतवर्ष के उत्थान, पुनर्विकास और पुनर्जीवन के वास्ते उन मूल्यताओं को उखाड़ कर अपने प्राचीन धर्म और नैतिक आदर्शों की स्थापना के लिए जीवन भर कार्य किया। भारतवर्ष को नवीन जीवन प्रदान किया।

राष्ट्र को नयी ज्योति, नया जीवन देने के लिए व्यवस्थापकों ने 'उत्तिष्ठत जाग्रत' सप्ताह का आयोजन करके जनता को लाभान्वित किया है। आयोजन के अन्तिम दिवस की पूर्णाहुति पर सभी धर्म-प्रेमियों, राष्ट्र-प्रेमियों के बीच मुझे भी सेवा का मौका मिला है। इसे मैं अपना सौभाग्य, भगवान् का आशीर्वाद, गुरु कृपा और उनका अनुग्रह मानता हूँ तथा इसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ।

प्राचीन वेद-उपनिषद् के युग में हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि गण, त्यागी-तपस्वी-संन्यासी और अर्पित जीवन वाले महापुरुषों की परम्परा में २०वीं शताब्दी में आकर हमें स्फूर्ति एवं प्रेरणा देकर जाने वाले, श्री स्वामी

विवेकानन्द जी के श्री चरणों में अनेकानेक साष्टांग दंडवत प्रणिपात समर्पण करते हुए आपके समक्ष अपने विचार रखना चाहता हूँ। इन विचारों के द्वारा हमारा अल्प योगदान स्वामी जी के चरणारविन्दों में पुष्पाञ्जलि के रूप में समर्पण और आप सब के अन्दर उपस्थित अन्तर्यामी भगवान् के रूप में आराधना भी है।

स्वामी जी महाराज की १९०१ में महासमाधि हुई। वे अपने जीवन के ४० वर्ष भी नहीं देख पाये, उनको मालूम हो गया था कि मैं ४० वर्ष भी नहीं जिऊँगा। अपने जीवन के समय में ही उन्होंने एक बात हमारे सामने रखी। उन्होंने कहा, 'मैं भारतवर्ष को साक्षात् दिव्य देवता समझता हूँ। इसके पुनरुत्थान के लिए आगे आने वाले ३००-४०० वर्षों के वास्ते पर्याप्त रूप में अपने विचार दे चुका हूँ। इन विचारों को क्रियान्वित करने के लिए कई शताब्दियाँ लगेंगी। मैं अपनी तरफ से अपना कर्त्तव्य समझ कर कहके, करके गया हूँ। अभी भारतवर्ष और उसकी प्रजा की जिम्मेदारी है और उत्तरदायित्व है कि जो मैंने सामग्री दी है उसको अपने निजी जीवन में, सामाजिक जीवन में और राष्ट्रीय जीवन में प्रयोग करें। भारतवर्ष अपने पूर्व के इतिहास में जैसा था, उससे भी अधकि उज्ज्वल और उत्कृष्ट स्थान पुनः प्राप्त करे।'

भारतवर्ष विश्व में एक सुनहरी राष्ट्र था। सभ्यता-संस्कृति में, शिष्टाचार में, नागरिकता में बहुत ऊँचा पहुँचा हुआ था। भारतवर्ष योग गुरु के रूप में रहा, ऐसा कहा जाये तो यथार्थ सत्य होगा, अतिशयोक्ति नहीं होगी। किन्तु दुर्भाग्यवश पाश्चात्य की बाहरी बनावटी जगमग को देखकर भारतवासी अपने आपको पागल बनाकर उसकी नकल करते हैं। उनमें न तो सभ्यता है और न ही शिष्टाचार । हमारा देश जब पूर्णतया विकसित था तब उनमें अभी नागरिकता शुरू भी नहीं हुई थी, वह अभी जंगल में ही रहते थे। स्वामी जी के हृदय में भारत एवं उसकी जनता के वास्ते अत्यन्त प्रेम, स्नेह भ्रातृभाव एवं एकता का तादात्म्य रहा।

स्वामी जी का एक स्वप्न था। हमारी मातृभूमि स्वतंत्रता को खोकर गुलामी में फँसी हुई है। इस दुर्दशा से उठकर भारत पुनः सबल, सजग, सजीव, प्रगतिशील और एक महान् राष्ट्र बने। भारतवर्ष तमाम लोगों के लिए प्रकाश देने वाला तथा नया मार्ग दर्शन देने वाला हो। मानव समाज के प्रति उनके उद्धार तथा उनके अन्दर की महनीय आकांक्षा को पूरा करने का सौभाग्य, यहाँ पर बैठे हुए आप सबका है। इस दासानुदास का संवाद भी आप सबके लिए है। उनसे पायी हुई अतुल्य सम्पत्ति, बहुत महान् ऊँचे-ऊँचे विचार, आदर्श, दिव्यता का आह्वान है। यदि उनको स्वीकार कर जीवन में क्रियान्वित करना शुरू कर देंगे, तो समझें आपका भाग्य खुल गया।

स्वामी जी के आह्वान एवं संदेशों को आप पिछले ६ दिनों से सुन रहे हैं। अच्छी स्वादिष्ट खाद्य वस्तु बनाने के लिए छौंक लगाते हैं। आपने मेरे भी कुछ विचार सुने, यह मेरी तरफ से छौंक लगाना ही समझें। स्वामी जी महाराज का आह्वान एवं सन्देश भारतवर्ष की सौभाग्यशाली प्रजा के लिए ही नहीं पूरे विश्व की मानवता के लिए है। उनका सन्देश अमर सन्देश है।

उनका व्यक्तित्व अन्तर्राष्ट्रीय, विश्वात्मक व्यक्तित्व है। व्याकरण की दृष्टि से मैं भूतकाल का प्रयोग न करके वर्तमान का प्रयोग कर रहा हूँ। मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि अन्तर्राष्ट्रीय विश्व समुदाय के लिए यह व्यक्तित्व हमेशा मार्ग दर्शक रहेगा।

कहा जाता है अभी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक भयानक विपत्ति, भयानक परिस्थिति आयी हुई है। सर्वश्रेष्ठ ऊँचे से ऊँचे नेता मानव के भविष्य के लिए भयभीत हो गये हैं। मानव के लिए भविष्य है भी कि नहीं, इसमें ही एक प्रकार की अनिश्चितता आ गयी है। ऐसी परिस्थितियों में कई व्यक्तियों का नाम लिया जाता है। उनके दर्शन एवं विचारधारा को अपनाएँ तो आप बच सकते हैं, अन्यथा आप का विनाश बिल्कुल अनिवार्य है।

इस प्रकार की समस्या के लिए मूल कारण क्या है? जगत् का बाह्य स्वरूप मानवता का व्यक्तित्व है। हमारे पूर्वज ज्यादा से ज्यादा संख्या में जिस धर्म के हैं, इसे सनातन वैदिक धर्म कहते हैं जो ज्ञान के आधार पर अपरोक्ष अनुभूति से उत्पन्न है। हमारे दर्शन अनुभव-सिद्ध दर्शन हैं। ज्ञान की अभिव्यक्ति में केन्द्रीय घोषणा यह है, 'आप अजर, अमर, अविनाशी, दिव्य आत्मस्वरूप हो, केवल मात्र हड्डी-मांस का पिंजरा नहीं हो। स्वार्थ-अहंकार, राग-द्वेष से भरा मन भी आप नहीं हो। यह आपका वास्तविक निजी व्यक्तित्व नहीं है। मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय और शरीर से परे आप एक उज्ज्वल ज्योति हो। आप एक ऐसे तत्त्व हो जिसे हम नित्य और सत्य मानते हैं। जिनको हम परब्रह्म, परमात्मा, विश्वात्मा कहते हैं। यह तत्त्व नित्य अपरिवर्तनीय, अविनाशी शाश्वत अमर है।'

भिन्न-भिन्न धर्मों के अनुयायी उस परम सत्ता को अनेक प्रकार के नाम देते हैं। ब्रह्म कहो, भगवान् कहो, अल्लाह कहो, आहुरमज्दा कहो, जिहोवा कहो, ऑलमाइटी फादर कहो। जितने भी नाम लगाओ किन्तु अन्तिम सत्ता अभिन्न विश्वात्मक, अनादि एवं अनन्त है। और आप जितने भी यहाँ सुन रहे हैं, उस परम तत्त्व सच्चिदानन्द, शान्ति स्वरूप नित्य शुद्ध के आप अंश हैं। आप भी दिव्य, अमर, अनादि और अनन्त हैं। आपके लिए न जन्म है न मृत्यु, न वृद्धत्व है न रोग है। आप नित्य शुद्ध, नित्य मुक्त, नित्य परिपूर्ण आत्म तत्त्व हैं। अपनी दिव्यता और ज्ञान के अनुरूप अपना जीवन बनाएँ। अपने विचार, भावना, वाणी और व्यवहार में उस दिव्यता को प्रकट करने का व्रत ले लें। इससे आपका जीवन सुन्दर, उत्कृष्ट होगा, प्राणीमात्र के लिए कल्याणकारी एवं विश्व के लिए हितकारी होगा। तमाम लोग आपसे लाभान्वित होंगे। दिव्यता आपके अन्दर से प्रस्फुटित होकर तमाम व्यावहारिक कार्य क्षेत्र में आनन्द, सत्यता, पवित्रता, प्यार, दया, करुणा ही तो लायेगी। आप दिव्यता के सक्रिय उज्ज्वल केन्द्र बनेंगे। आप जहाँ भी जायेंगे वहाँ सुख, शान्ति और सामंजस्य से पूर्ण भारतीय भावना प्रस्फुटित होगी।

आप उस दिव्यता को भूल जाते हैं। आपको तात्कालिक थोड़े समय के लिए व्यावहारिक क्षेत्र में मिला हुआ यह जीवन एक माध्यम है, आपके रहने के लिए गृह है, निवास स्थान है। अज्ञानवशात्, अविवेक, अविचार के कारण इसके साथ आप एकता जोड़ लेते हैं। दिव्यता की विस्मृति हो जाती है। विस्मृति ही समस्त विषमताओं का कारण है। स्वार्थ, अहंकार, क्रोध, द्वेष, घृणा और परस्पर संघर्ष दैवी स्वभाव के विपरीत हैं। ये आसुरी तत्त्व हमारे अन्दर जम जाते हैं और फिर यही प्रकट होते हैं-इसका मूल कारण है दिव्यता की विस्मृति। स्वामी विवेकानन्द जी ने एक आवाज उठायी- 'आप दिव्य हैं, दिव्यता की स्मृति रखना आपका परम सौभाग्य है। यह सबसे ज्यादा मूल्यवान ऐश्वर्य है, धन है। दिव्यता की विस्मृति आपके जीवन में भयानक दुर्गति, भयानक विपत्ति है। दिव्यता का हमेशा ख्याल रखना ही आपकी सम्पत्ति है।'

दिव्यता के विकास के लिए उन्होंने एक महामन्त्र दिया है। अपने छोटे मानव व्यक्तित्व पर प्रेम करके स्वार्थ परायण जीवन जिया तो विषण्णता आपको त्रास देगी तथा दूसरों के लिए भी त्रास का कारण बनेगी। इसकी एक मात्र औषधि है, स्वार्थ को तिलाञ्जलि तथा स्वार्थ को हृदय से जड़ समेत उखाड़ कर फेंक देना। अतः इसी दृष्टिकोण से आगे बढ़ें, 'जीवन पर्यन्त, अन्तिम श्वास तक दुनिया में रहकर मैं कितना भला कर सकता हूँ। प्राणीमात्र के लिए मेरे से क्या सेवा हो सकती है? क्या परोपकार हो सकता है? मैं अपने जीवन के द्वारा दूसरों को कैसे लाभान्वित कर सकता हूँ।' स्वार्थी बनने के लिए बिल्कुल इन्कार कर दो। पता नहीं कितने जन्म जन्मांतर तक अपने जीवन के लिए स्वार्थ करते आए हैं। अब कम से कम इस जीवन के लिए तो पक्का निर्णय कर लें, 'मैं अपने आप को बिल्कुल भूल जाऊँगा,' यही दृष्टिकोण रखें, 'वो ही जीवन हमारा जीवन होगा, वो ही दिन वास्तविक दिन होगा जिसमें सुबह से शाम तक अपने लिए थोड़ा भी विचार न करके केवल मात्र परहित, पर कल्याण, परोपकार के लिए ही जीवित रहूँगा। प्राणीमात्र को लाभान्वित करने के लिए ही मेरा श्वास चलेगा।'

अपने लिए खाना-पीना-सोना प्रत्येक प्राणी, कीड़ा-मकोड़ा, पशु-पक्षी करता है। यदि हमारा भी जीवन ऐसा ही होगा तो हमारी मानवता कहाँ है? उसकी क्या विशेषता है? क्या श्रेष्ठता है? देखने में आकृति से हम मानव हैं, लेकिन पशु जैसा व्यवहार है। क्या ऐसा ही जीवन जी के पशु के जैसे मर जाना है? हमारा लक्ष्य क्या है? इसी के

लिए हमने जन्म लिया है क्या? स्वामी विवेकानन्द जी का आह्वान है, 'वही प्राणी वास्तव में जीवित है, जो परहित के लिए जीवन जीता है, बाकी जीवित रहते हुए भी मरे के समान हैं। परोपकार के लिए अपने शरीर को भी त्याग दो, तभी तुम धन्य हो, दिव्य हो।' परोपकार सेवा धर्म को अपनाओ, स्वार्थ को रोग और अभिशाप समझकर अपने जीवन से लात मार करके निकाल दो। औरों के लिए चिन्तन करते हुए आगे बढ़ो, यही तो जीवन है। लोकहितकारी बनकर मरते हुए मानव हृदय में, मानव स्मृति में अमर बनकर जाइये।

मैं समझता हूँ यह सप्ताह नवीन जागृति, नवीन जीवन का है, इसकी पूर्णाहुति नहीं है, यह श्री गणेश है। स्वामी विवेकानन्द जी के उत्तम उत्कृष्ट, उज्ज्वल, विचारधारा, आह्वान, उद्‌घोषणा की मशाल हमेशा अमर ज्योति बनकर जलती रहे।

कभी नकल मत करना। हमारे राष्ट्र में आदर्श की पर्याप्त अतुल्य सम्पत्ति है। सम्पत्ति की मूल्यता को अच्छी तरह. से पहचानना और पाश्चात्य जगत् की चकाचौंध के प्रलोभन में मत आना। आप असली हो और शपथ लो कि स्वार्थ को अपने जीवन में स्वप्न में भी नहीं आने देंगे। सत्यव्रती बनो, सदाचारी बनो। स्वामी विवेकानन्द जी के आदर्श के आधार पर जीवन बनाओ। काया वाचा मनसा उनके अन्दर ज्वलन्त पवित्रता थी। देश के प्रति अथाह प्रेम उनके मन में था। वैसा देश-प्रेम और पवित्रता अपने भीतर भर दें। सेवा को अपना परम धर्म मानें। यही हमारे गुरु महाराज श्री स्वामी शिवानन्द जी कहते थे। निःस्वार्थ सेवा के द्वारा मन को शुद्ध करके अपने निज सच्चिदानन्द स्वरूप को प्राप्त करें। परम पिता परमात्मा, श्री स्वामी विवेकानन्द जी और सद्‌गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी का अनुग्रह आप सब के ऊपर हो। हरि ॐ तत् सत्।

५. आप दिव्य हैं"

(गुमुरगुण्डा (छत्तीसगढ़) में २१.४.९२ को दिया गया प्रवचन।)

प्यारे अमर आत्मस्वरूप !

आत्म-स्वरूप का अर्थ है जिसका जन्म नहीं है, जिसकी मृत्यु नहीं है, बुढ़ापा नहीं है, कोई बीमारी नहीं है, जिनको कोई भय भी नहीं, जो अनादि और अनन्त है, जो नित्य और शाश्वत है, जो अविनाशी है। जो दुःख से परे शान्ति स्वरूप, आनन्द स्वरूप है।

आप सब लोग आत्म स्वरूप, जीव स्वरूप हैं। यह कभी भी नहीं बदलेगा क्योंकि यह सत्य है, हमेशा सत्य है, यह तीनों कालों में सत्य है। पिछले काल में भी, अभी के काल में भी और आने वाले काल में भी ये हमेशा सत्य है। यह सत्य कभी नहीं बदलता है। इसलिए मैं हमेशा आपको सत्य नाम से बुलाता हूँ, बात करता हूँ। मैं कहता हूँ, आप कभी बदलते नहीं हैं, जो बदलता है, वह आप नहीं हैं, जो आप हैं, वह बदलता नहीं है। देखो, मान लो कि आपके पास एक छाता है या समझो कि आपके पास एक जूता है। जब नया खरीदते हो तो यह छाता या जूता बिल्कुल नया रहता है। २-३ वर्ष के बाद वह पुराना हो जाता है। ७-८ साल के बाद बिल्कुल खराब हो जाता है, फट

जाता है। वो आपका छाता-जूता बदलता है। क्या इसका अर्थ हुआ आप बदलते हैं? आप छाता हैं क्या? आप जूता हैं क्या? कपड़ा हैं क्या? ऐसे ही जो बदलता है, वह आपका शरीर बदलता है। यह शरीर हड्डी-मांस का पिंजरा है जिसके अन्दर कुछ समय के लिए आप रहते हैं, जैसे तम्बू के अन्दर कोई रहता है, झोपड़ी के अन्दर कोई रहता है, छोटे घर के अन्दर थोड़े दिन के लिए कोई रहता है तो वह स्वयं घर तो नहीं बन जाता है! घर थोड़े समय के बाद पुराना भी हो सकता है, खाली भी हो सकता है कुछ समय के बाद टूट-फूट भी सकता है। शरीर के परिवर्तन का अर्थ यह नहीं होगा कि आप बदल रहे हैं, आप तो उसके अन्दर जो है वह 'आप' हैं। जैसे जूता आपका है, वैसे ही शरीर आपका है, जैसे छाता आपका है, वैसे ही शरीर आपका है।

जूता, छाता आप दुकान से खरीदते हैं, शरीर भगवान् ने आपको दिया है। और जैसे कोई फैक्टरी, कारखाने में जूता, छाता बनता है तो आपके माँ-बाप ने यह शरीर बनाया है भगवान् की आज्ञा से। आपको किसी ने नहीं बनाया, आप कहाँ से आये हैं? हम यहाँ बैठे हैं न, यहाँ अन्धेरा तो नहीं है। क्यों अन्धेरा नहीं है? क्योंकि यहाँ रोशनी है, रोशनी कहाँ से आयी? देखो यहाँ सब जगह धूप है, यह कहाँ से आयी ? रोशनी कहाँ से आयी ? वो प्रकाश का एक केन्द्र है, प्रकाश का एक पुंज है, वहाँ से आयी। प्रकाश, घन-ज्योति प्रकाश जिसको हम बोलते हैं, वह सूर्य नारायण हैं। जैसे प्रकाश वहाँ से आता है, वैसे ही हम, आप सब इससे भी परे एक तत्त्व है, उस से आते हैं। 'वह' हमारा आदि मूल है।

जैसे जड़ से पेड़ निकलता है, ऐसे वो हमारी जड़ है। एक स्रोत से नदी आती है, वैसे ही वह हमारा स्रोत है। उस उत्पत्ति स्थान को हम बोलते हैं परम आत्म स्वरूप। हम छोटे आत्म स्वरूप हैं, हमको बोलते हैं जीवात्मा। उसको बोलते हैं परमात्मा। हम जैसे असंख्य, अगणित, अनन्त जीवात्मा उनसे आते ही रहते हैं, अपने अन्दर से वह हमको यहाँ पर भेजता रहता है, उसे आपको हमको बनाना नहीं पड़ता है। हमेशा हम उनका स्वरूप बन कर के आये हैं। और जैसे नदी के किनारे में रेती है, बालू है। नदी की बालू में लाखों, हजारों, करोड़ों बालू के कण होते हैं, वैसे ही बिना गिनती के जीवात्मा परमात्मा से निकल कर आते हैं, हम भी उनका एक भाग हैं।

परमात्मा का जन्म नहीं है, मरण भी नहीं है। परमात्मा के लिए किसी प्रकार का दुःख नहीं है, दर्द नहीं है, वह परिपूर्ण आनन्द स्वरूप है। परम शक्ति स्वरूप है। उस परमात्मा का आप एक भाग हैं, जैसा वह है, वैसे आप हैं। लेकिन आपका शरीर यहाँ पर बना हुआ है। इस शरीर के लिए जन्म भी है, मरण भी है। यह कभी छोटा रहता है, कभी बड़ा हो जाता है, कभी बूढ़ा हो जाता है। लेकिन शरीर में यह जो परिवर्तन होता है, वह आपको स्पर्श नहीं कर सकता है, आपको बदल नहीं सकता।

आप हमेशा वही हैं सत् चित् आनन्द स्वरूप, अविनाशी अमर आत्मा। जैसा परमात्मा दिव्य है, आप भी दिव्य हैं। परमात्मा में कोई अवगुण, दोष नहीं हैं। आपकी सच्चाई में भी कोई गुण-दोष नहीं हैं। आपके अन्दर की यह सच्चाई ही आपका स्वरूप है, आपका सत्य है। वो सदा पवित्र है। आप पवित्र जीव स्वरूप है। परम शान्तिमय जीव स्वरूप हैं। इससे बढ़ कर कोई सत्य नहीं है। इस सत्य को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। पकड़ के रखना चाहिए। यह सोने, चाँदी, नवरत्न से भी ज्यादा मूल्यवान् है। हाँ, सब प्रकार के अनाज, फल-फूल, सब्जी-साग से यह अमूल्य तत्त्व है। इस सत्य के बराबर अमूल्य, ऐश्वर्य और दूसरा कोई नहीं है।

यह सत्य क्या है? यह आपके दिव्य स्वरूप का सत्य है। आपका और भगवान् का इतना निकट और घनिष्ट सम्बन्ध है। उनका ही एक भाग है, जैसे एक पत्ते और वृक्ष का सम्बंध है। लालटेन में, लालटेन, बत्ती, तेल, माचिस ये चारों भी हों तो क्या वह अन्धकार को दूर कर सकता है? नहीं, तब तक दूर नहीं कर सकता जब तक उसमें ज्योति न जलायी जाए। ज्योत है तो बत्ती काम का है, ज्योत नहीं है तो बत्ती बेकार है। यह बत्ती का जितना भाग है, वह सब ज्योत के वास्ते ही बनाया हुआ है। एक खास चीज, जो बत्ती में, लालटेन में है, वह ज्योत है। ऐसे ही आप इस शरीर रूपी स्थान में एक ज्योत हैं, आपके कारण शरीर का मोल है, आप इसको छोड़ कर चले

जायेंगे तो शरीर को फेंक देंगे। इसलिए आपको हमेशा अपने सत्य को पकड़ कर रखना चाहिए। तब आपके अन्दर सब शक्ति और सब निर्भयता आयेगी। आपकी शान्ति और आनन्द बना रहेगा।

लेकिन आपको आदत हो गयी है ये 'मैं' हूँ, ये 'मैं' हूँ। ऐसे सोचना की, गलत सोचने की आदत हो गयी है। बड़े शान्ति एवं प्रेम से ऐसी आदत को अपने अन्दर से आहिस्ते-आहिस्ते निकाल देना चाहिए। गलत आदत को निकालने का उपाय क्या है? सत्य का अभ्यास। जो हमने सत्य आपके बारे में सामने रखा है, उसका अभ्यास करें। नयी आदत को अब शुरू करें। नयी आदत पुरानी आदत को निकाल देगी। नयी आदत का जब आप अभ्यास करते हैं, उसी को कहते हैं साधना, उसी को कहते हैं योगाभ्यास, उसी को कहते हैं भजन, उसी को कहते हैं आत्म-चिन्तन, उसी को कहते हैं ज्ञान। हम भगवान् की भक्ति, भजन, पूजा, प्रार्थना करते हैं, इनका उद्देश्य भी हमें ज्ञान प्रदान करना है। हमको यह ज्ञान दे कर हमें स्वतन्त्र बनाते हैं। हमको उनके साथ एक बना देते है। जहाँ से हम आये हैं, वहाँ हम पुनः जा कर पहुँच जाते हैं। हाँ, पुनः वहाँ पहुँच गये तो हमारा जीवन सफल हो गया, सार्थक हो गया। यह सत्य आपका अमूल्य ऐश्वर्य है।

इस नयी आदत का अभ्यास करते वक्त बार-बार पुरानी आदत आपको बाधा करती रहेगी, क्योंकि वह पुरानी हो चुकी है, पक्की हो गयी है, छूटती नहीं है। यदि आपने घर में किसी छोटे कुत्ते के पिल्ले या बिल्ली के बिलौटे को पाल कर उसका लाड़-प्यार किया हो तो वह हमेशा आपकी गोद में आ कर बैठेगा। जब वह छोटा है, आपकी गोद में बैठ जाए तो अच्छा लगता है, लेकिन बड़ा हो जाता है, तगड़ा हो जाता है, फिर भी वह आपके ऊपर आ कर बैठे तो आप उसको हटाने की कोशिश करते हैं। लेकिन वह नहीं भागेगा, क्योंकि उसकी आदत बन गयी है। वह समझता है आप ही उसकी कुर्सी हैं, बिस्तर हैं। इसलिए क्या करना पड़ता है? जैसे ही पुरानी आदत से वह कूद कर आपकी गोद में बैठता है, आप तुरन्त हटा कर • बाहर निकाल देते हैं। बहुत बार ऐसा करना पड़ता है, तब जा कर वह आदत छोड़ता है।

इसी तरह से, 'यह शरीर मैं हूँ, यह हड्डी-मांस का पिंजरा मैं हूँ, मैं हूँ,' यह गलत आदत आपको सतायेगी। इसे मन से आपको हटाना पड़ेगा, 'हट्! हट् !' मन से हटाने का क्या तरीका है? इसमें अपनी बुद्धि का प्रयोग करके इसको हटाना पड़ेगा। क्योंकि मन में समझ नहीं है, ज्ञान नहीं है, वह अज्ञानी है। बुद्धि में ज्ञान है। मन तो ऐसा है जैसा कि अँधेरा है और बुद्धि ऐसी है जैसा प्रकाश है। यदि बुद्धि को अच्छा ग्रन्थ पढ़ कर, भगवद्गीता ज्ञान की बात को सुन कर आपने ठीक बनाया तो, ये बुद्धि आपको काम देगी। बुद्धि में जब प्रकाश आ जाता है, विवेक आ जाता है और जब आप पवित्र जीवन के द्वारा बुद्धि में शुद्धता-पवित्रता लायेंगे, तब वह बुद्धि काम देती है। लेकिन इस में आप गलत विचारों को रखते हैं तो अकल-बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। रावण में खूब अकल थी, बड़ा बुद्धिशाली था, लेकिन बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। उसके अन्दर अहंकार और अवगुण बैठ गये थे। दुर्योधन और कौरव भी बड़े बुद्धिशाली थे, राजकुमार थे, उनकी भी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी, बुद्धि दुर्बुद्धि हो गयी थी। ऐसी दुर्बुद्धि आपकी दुश्मन बन जाती है। और ऐसी बुद्धि जो है वह आपके मन को साफ करने में, पुरानी आदत को हटाने में काम नहीं दे सकती। ऐसी अकल आपको इस संसार में चालाक बना सकती है, लेकिन आपको मोक्ष नहीं दिला सकती। शबरी की बुद्धि ऐसी नहीं थी, इस कारण भगवान् श्री राम खोज करते-करते उसके यहाँ पहुँचे। ऐसी दुर्बुद्धि रावण में थी, इस कारण राम को उसे मारना पड़ा। शुद्ध, पवित्र बुद्धि आपकी परम मित्र है। दूषित बुद्धि आपकी दुश्मन है। बुद्धि को पवित्र बना करके मन को शुद्ध करो। मन के अज्ञान को निकालो और सत्य का अभ्यास करो।

ऐसा करने से बड़े से बड़ा दुःख भी आपको हिला नहीं सकता, भयभीत नहीं कर सकता, कभी आपके अन्दर दुर्बलता नहीं आ सकती और कभी भी आपके अन्दर किसी प्रकार का अवगुण, दोष प्रवेश नहीं कर सकता। और परमात्मा को हमेशा यह प्रार्थना करो, 'हे प्रभु! मैं आपका एक अंश हूँ, तू जैसा है, वैसा मैं हूँ। कृपा करके आप ऐसी दया करो कि आपको मैं कभी भूलूँ नहीं। मेरी बुद्धि में दिव्यता का यह ज्ञान बनाये रखो। जैसा मैं

दिव्य हूँ, ऐसा मेरा जीवन भी दिव्य हो। मेरा विचार भी दिव्य हो। दिल का भाव भी दिव्य हो। मेरी वाणी और वार्ता भी दिव्य हो, सब कार्य दिव्य हों।'

यही माँगना चाहिए एवं यही प्रार्थना करनी चाहिए भगवान् से, 'हे प्रभो! मुझे आप अपनी शान्ति एवं प्रेम का प्रतिनिधि बनाओ। प्रेम और शान्ति का दूत बनाओ। अपने जीवन द्वारा मैं आपकी दिव्य शान्ति और प्रेम को ही प्रकट करूँ! जहाँ पर घृणा है, द्वेष है वहाँ पर मैं प्रेम को ले आऊँ, जहाँ पर क्रोध है, वहाँ पर क्षमा को ले आऊँ, जहाँ निराशा है वहाँ पर मैं आशा को ले आऊँ, जहाँ पर शंका और संशय है, जहाँ पर अश्रद्धा और अविश्वास है वहाँ पर मैं विश्वास को और श्रद्धा को ले आऊँ। जहाँ पर संघर्ष और झगड़ा है वहाँ पर मैं एकता को ले आऊँ। जहाँ अशान्ति है वहाँ शान्ति ले आऊँ और जहाँ पर भी दुःख है, शोक है, चिन्ता है, वहाँ पर मैं सुख को ले आऊँ। ऐसी दुनिया में मैं आपकी दिव्यता को ले कर आऊँ। मैं सबको प्रेम दूँ और सबको समझने की कोशिश करूँ। सबके साथ सहनशीलता का बर्ताव करूँ। सबके साथ क्षमाशीलता का व्यवहार करूँ। किसी से कुछ नहीं माँगूँ। सबको सब-कुछ मैं देता जाऊँ। हे प्रभो! मुझे आप अपना ऐसा प्रतिनिधि बनाओ, अपनी दिव्यता का दूत बनाओ, अपने प्रेम और शान्ति का दूत बनाओ। दिन-प्रतिदिन मैं अपने जीवन को इस प्रकार की दिव्यता से सम्पन्न बनाता जाऊँ।' सबसे सुन्दर यह प्रार्थना है और हर रोज, हमेशा इस प्रार्थना को भगवान् के चरणों में पहुँचाना चाहिए। और भगवान् के पास आपकी प्रार्थना पहुँचने में कोई देर नहीं होगी। सरकार में कुछ पूछना हो तो बहुत देर लगती है, क्योंकि सरकार बहुत दूर बैठी है। भगवान् दिल्ली में नहीं बैठे हैं, भगवान् भोपाल में नहीं बैठे हैं। गुमुरगुण्डा में हैं, आपके घर में हैं। आपके लिए बहुत निकट हैं। आप स्वयं अपने लिए जितने निकट हैं, उससे भी ज्यादा निकट हैं भगवान् आपके। देखो ये अंगुली आपके कितनी निकट है! आप उसको तुरन्त स्पर्श कर सकते हैं। लेकिन भगवान् आपके इससे भी ज्यादा निकट हैं। क्योंकि यह अंगुली आपके बाहर है, भगवान् आपके अन्दर हैं। वह निकट से भी ज्यादा निकट हैं। आप प्रार्थना करेंगे, तुरन्त उनको प्रार्थना पहुँच जाती है और उनका जवाब भी तुरन्त आ जाता है। दिल्ली से तार आने में एक हफ्ता हो जाता है, भगवान् के पास देर नहीं होती है। प्रेम से पूछना चाहिए-बिना प्रेम से पूछा तो बहुत देर हो जाती है।

लगा ले प्रेम ईश्वर से अगर तू मोक्ष चाहता है।
नहीं वो पाताल के अन्दर, नहीं वो आकाश के ऊपर।
सदा वो पास है तेरे कहाँ ढूंढत जाता है।

प्रेम ही उनके लिए रास्ता है। भक्ति से तुरन्त आप उनके पास पहुँच सकते हैं। प्रह्लाद ने इसी को बताया। शबरी ने इसी को बताया। मीराबाई ने इसी को बताया। रामकृष्ण परमहंस ने भी इसी को बताया। स्वामी शिवानन्द जी यही बोलते हैं, हमारे भगवान् यहाँ हैं, अब हैं, बाहर भी हैं, अन्दर भी हैं। यही आपके सनातन धर्म का, वेद का ज्ञान बताता है। यही वेदान्त के उपनिषद् आपको बताते हैं। यही भगवद्गीता बताती है। रामायण और भागवत यही बताते हैं। भगवान् अभी हैं यहीं पर हैं।

६. भगवान् से सम्बन्ध जोड़ें

("गुमरगुण्डा (छत्तीसगढ़) में २०.४.९२ को दिया गया प्रवचन।)

उज्ज्वल आत्म स्वरूप, परमपिता परमात्मा की अमर सन्तान !

भगवान् शंकर विशेष करके जंगल में, पर्वत में निवास करने वाले हैं। वे राम और कृष्ण जैसे राजमहल में रहने वाले नहीं हैं। पर्वत के ऊपर या पेड़ के नीचे आसन लगा करके ध्यान में बैठते हैं। उनकी पूजा के लिए बाजार से सामग्री खरीदने की जरूरत नहीं है। जल, दो-चार बिल्व पत्र और पुष्प आदि से पूजा पूरी हो जाती है एवं शंकर भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। ऐसे भगवान् शंकर की कृपा और अनुग्रह आप सबके ऊपर चाहता हूँ एवं प्रार्थना भी करता हूँ।

मैं जयपुर से चार-पाँच घंटे का सफर करके भरपूर गर्मी में यहाँ पर एक बजे पहुँचा हूँ। सफर के परिश्रम और थकान से कुछ बैचेन रहा। भगवान् शंकर ने ठण्डी हवा भेज दी, बादल करके थोड़ी वर्षा भी कर दी। मेरे जैसे बेकार, नालायक आदमी के लिए शंकर भगवान् ने इतनी बड़ी कृपा कर दी तो सच्चे भक्त के लिए क्या नहीं कर सकते ? सच्चे दिल से उनकी भक्ति करने से दुनिया का सब कुछ, जो भी आप चाहते हैं, वे दे देंगे।

भगवान् शंकर ने आपको यहाँ जंगल में बैठे-बैठे ही अपने खास प्रिय पुत्र स्वामी शिवानन्द जी महाराज का सन्देश भेज दिया है। बड़े-बड़े महापुरुष हमारे स्वामी जी को शंकर भगवान् का अंशावतार मानते थे एवं

शंकर स्वरूप ही समझते थे। शंकर भगवान् का आपके ऊपर कितना महान् प्रेम, महान् कृपा है, थोड़ा सोचिए। आपको सुदूर उत्तर प्रदेश, हिमालय क्षेत्र, गंगा के तीर जाना नहीं पड़ा। यहाँ बैठे-बैठे ही आपके प्रदेश गुमुरगुण्डा में गुरु महाराज स्वामी शिवानन्द जी के ज्ञान का प्रकाश इस सेवक के माध्यम से आकर पहुँचा है। इसी को भगवान् का अनुग्रह और कृपा कहते हैं। आप और हम उनके हैं, इसलिए यह कृपा हुई है।

'हम भगवान् के हैं, भगवान् हमारे हैं' ऐसा याद रखने से भगवान् से सदा सम्पर्क बना रहता है। इस सम्बंध को जो भूल जाता है, उनका बड़ा दुर्भाग्य है। भगवान् को भूलने से शान्ति, आनन्द, ज्योति नहीं मिलती है, बल्कि संसार की खटपट, अशान्ति, झगड़ा-फसाद, राग-द्वेष मिलता है। प्रपंच के बीच में रहते हुए भी आनन्द और शान्ति को कैसे प्राप्त करें, इसका क्या रहस्य है? भगवान् से सदैव आन्तरिक सम्बंध जोड़ कर रखो। आप कहीं भी, किसी भी परिस्थिति में रहेंगे, आपके मन में दिव्य शान्ति दिव्य आनन्द, दिव्य ज्योति सदा साथ रहेगी।

ये देखो, चारों ओर रात्रि का अन्धकार छा गया है, जंगल-पर्वत सभी जगह अन्धेरा ही अन्धेरा है। फिर भी यहाँ पर प्रकाश है। यह प्रकाश कैसे आया? एक सम्बंध से। बिजली की तारों से सम्बंध जोड़ कर प्रकाश प्राप्त किया। ऐसे ही हमारे और भगवान् के बीच में सम्बंध की बात है। इसी सम्बंध द्वारा हमारा जीवन अन्धकर से प्रकाशमय बन सकता है। दुःख-कष्ट के बीच में भी सुख का अनुभव कर सकते हैं। बाहर की अशान्ति वातावरण में भी अपने अन्दर दिव्य शान्ति का अनुभव कर सकते हैं। भय में निर्भयता का अनुभव होगा।

निराशा से कमजोरी आने पर हम आशा से भरपूर एवं शक्तिशाली बन जाते हैं। घृणा और द्वेष के बीच में भी अपने हृदय में प्रेम और शान्ति को स्थापित कर सकते हैं। इन सब बातों का आपको, आपके आध्यात्मिक

दादा स्वामी शिवानन्द जी ने बताया है, पारिवारिक कुटुम्ब के दादा जी ने नहीं।

आज से १०५ वर्ष पूर्व भारतवर्ष में इनका जन्म हुआ था एवं ७५ वर्ष तक जीवित रहे। दूसरों के हित एवं भलाई के लिए अपना जीवन बिताया। दुनिया में सभी सुखी रहें एवं शान्ति का अनुभव करें, यही चाहना थी। इसलिए पूरी दुनिया उनको याद करती है। उनको शरीर छोड़े २९ वर्ष हो गये, किन्तु अभी भी गुप्त एवं सूक्ष्म रूप से सबकी भलाई के लिए कार्य कर रहे हैं। वही शक्ति आप लोगों की भलाई सोचकर पिछले वर्ष भी इस दास को ले आई और इस समय भी ले आई। शंकर भगवान् एवं गुरु महाराज स्वामी शिवानन्द जी की आपके ऊपर विशेष दया और विशेष प्रेम है। इसी लिए इस प्रकार का कार्यक्रम बनाकर, हमको यहाँ भेजकर और आप सब को यहाँ पर बुलाकर कुछ ज्ञान देना चाहते हैं। भगवान् के नाम को अपने साथ रखना सबके लिए सुलभ और प्राप्य उपाय है। इसके लिए विशेष अधिक पढ़ाई की जरूरत नहीं है। भगवान् का नाम और भगवान् दोनों एक ही हैं। जहाँ भी भगवान् का नाम है, वहाँ अंधियारा नहीं है, वहाँ उजाला ही उजाला है।

'हरि नाम प्यारा, सबका सहारा,
हरि नाम जपके सुख शान्ति पावो।
कहे निवृत्ति, हरि नाम भक्ति,
हरि नाम शक्ति देवे मुक्ति।'

हरि ॐ तत् सत्।